वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक २ फरवरी २०२६

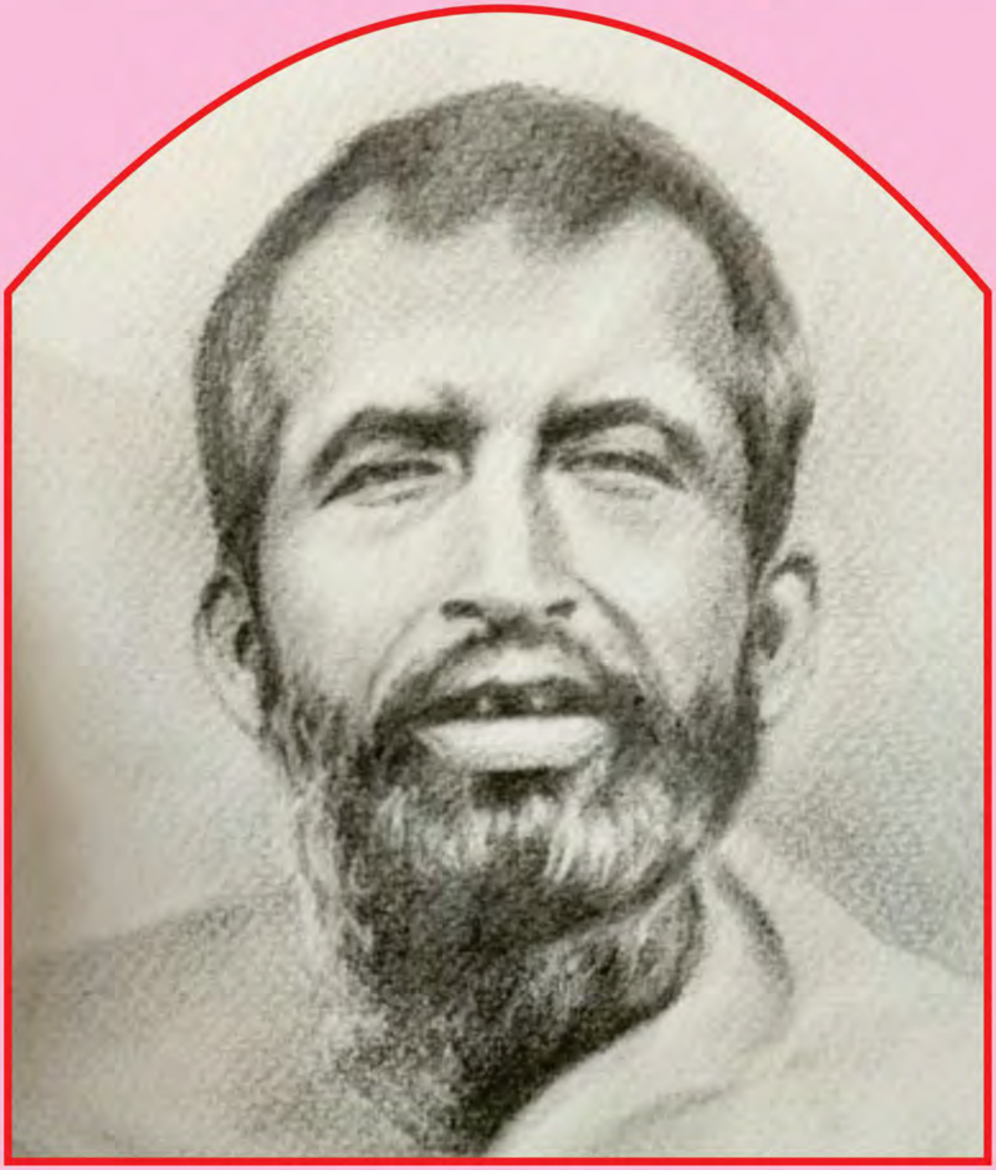

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक २

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

माघ, सम्वत् २०८२

फरवरी, २०२६

अनुक्रमणिका

* ईश्वर के लिए व्याकुलता होनी चाहिए : रामकृष्ण परमहंस देव ५४
* श्रीशंकराचार्य और श्रीचैतन्य महाप्रभु : दो मत, लक्ष्य एक (स्वामी ईशानन्द) ५७
* शिवरात्रि का महत्त्व (श्रीमती मिताली सिंह) ६१
* (बच्चों का आंगन) हनुमानजी! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ६५
* गोपाल की माँ अघोरमणि देवी की दिव्य भक्ति (ब्रह्मचारी वेदगम्यचैतन्य) ६७
* (युवा प्रांगण) युवाओं के लिए महाभारत के विलक्षण प्रसंग (स्वामी गुणदानन्द) ६८
* सर्वं शिवमयं जगत् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ७०
* रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद : लक्ष्य और कार्यप्रणाली (स्वामी सत्यरूपानन्द) ७२
* वैदिक काल में परिवार संकल्पना (प्रज्ञा जोशी) ७९
* शिव के पंचमुख स्वरूप (डॉ. अश्विनी पाण्डेय) ८३
* श्रीरामकृष्ण की अद्भुत दिव्य वाणी (स्वामी पद्माक्षानन्द) ८७
* (भजन एवं कविता) श्रीरामकृष्ण वन्दना (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') * पंकज नाभि रमापति राजे (श्रीधर प्रसाद द्विवेदी) ६६, लो प्रणाम हे रामकृष्ण प्रभु (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), * राम भजन करु भाई रे (भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'), * अभी भी नहीं हुए तेरे दर्शन (स्वामी वरेश्वरानन्द), * शंकर नाचत उमंग (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') ७७
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ८२

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५३
पुरखों की थाती ५३
सम्पादकीय ५५
रामगीता ६२
श्रीरामकृष्ण-गीता ७८
गीतातत्त्व-चिन्तन ८५
साधुओं के पावन प्रसंग ९१
समाचार और सूचनाएँ ९५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	**२५०/-**	**१२५०/-**
विदेशों में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में स्पीड पोस्ट का शुल्क
प्रति अंक ५५/- अतिरिक्त देय होगा

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर रामकृष्ण परमहंस देव का चित्र है।

फरवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

०१	स्वामी अद्भुतानन्द
१५	महाशिवरात्रि
१९	रामकृष्ण परमहंस देव
१३,२७	एकादशी

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६३ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्रीमती कविता श्याम भाटिया, रायपुर	२,१००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

रामकृष्ण मिशन आश्रम,

मोराबादी, राँची - 834008 (1927-2027),

e-mail : ranchi.morabadi@rkmm.org, Web : www.rkmranchi.org

श्रीरामकृष्ण मन्दिर नवनिर्माण के लिए विनम्र निवेदन

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य श्रीमत् स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज के चरण रज से पवित्र तथा श्रीश्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य एवं रामकृष्ण संघ के आठवें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज की तपस्थली ''रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची'' की स्थापना 1927 में हुई थी। शीघ्र ही वर्ष 2027 ई. में इस आश्रम की स्थापना का शताब्दी वर्ष प्रभु कृपा से हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाएगा । रामकृष्ण संघ के 11 वें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के तपस्या से पवित्र इस आश्रम हेतु हम सभी अनुरागी, भक्तों और शुभ-चिन्तकों के लिए सेवा-यज्ञ में आहुति प्रदान करने का यह परम-पवित्र अवसर है । आश्रम के इस शताब्दी वर्ष में विशेषकर राँची जिला के निकवटर्वी गाँवों में आदिवासी जनजाति के कल्याण के साथ-साथ उनके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन श्रीश्रीठाकुर, श्रीमाँ तथा स्वामीजी द्वारा प्रदत्त पथ के माध्यम से हो रहा है ।

आश्रम परिसर में श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ तथा स्वामीजी का वर्तमान मन्दिर अत्यन्त छोटा तथा भग्नावस्था में है । अतः मन्दिर का नव निर्माण अनिवार्य है इसके साथ ही साथ आश्रम परिसर के परिदृश्य (लैंड स्केपिंग) में भी आवश्यक सुधार अपेक्षित है। इसके अलावा साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय भी प्रस्तावित है । इस विस्तार के लिए मनुमानित लागत निम्न प्रकार है :

कं.सं.	निर्माण	क्षेत्रफल (वर्ग फीट में)	प्रस्ताव	अनुमानित लागत (करोड़ में)
1.	मन्दिर तथा लैंड स्केप	15,198	दो तलों में निर्माण तथा परिसर का सौंदर्यीकरण	6.0
2.	साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय	7,500	वर्तमान साधु निवास के ऊपर एक तल का निर्माण, रसोईघर, भोजनालय का पुनर्निमाण	1.5
			कुल लागत	7.5

इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर सभी भक्तों से अनुरोध है कि कृपया इस महत्त्वपूर्ण कार्य में आप यथासंभव योगदान कर पुण्य के भागी बनें ।

ध्यातव्य : प्रदत्त दान आयकर की धारा 80 जी के अन्तर्गत करमुक्त है। एक लाख से अधिक दानदाताओं का नाम मन्दिर परिसर पर अंकित होगा । दानकर्ताओं को 4 श्रेणियों में सम्मानित किया जाएगा ।

1) **रजत श्रेणी :** रुपये 1 लाख से 5 लाख तक

2) **स्वर्ण श्रेणी :** रुपये 5 लाख से अधिक व 10 लाख तक

3) **हीरक श्रेणी** : रुपये 10 लाख से अधिक व 20 लाख तक

4) **प्लेटेनियम श्रेणी** : रु. 20 लाख से अधिक

निवेदन : मन्दिर निर्माण हेतु सहयोग राशि निम्नलिखित बैंक खाते के माध्यम से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किये जायेंगे ।

Click Below fro Online Donation :

https://bit.ly/317 lzyh

Scan the below given QR Code to log into our Online Donation Site

Account Name : Ramakrishna Mission Ashrama,

Account No. : 50200081665283

Bank Name : HDFC BANK LTD. Morabadi,

IFSC CODE : HDFC0007443

सहयोग राशि के साथ अपना ईमेल, पैन नं., मोबाईल नं., पूरा पता एवं उद्देश्य हमारे ईमेल **ranchi.morabadi@rkmm.org** या मोबाईल नं. 9835158705 पर भेजें ।

प्रभु की सेवा में आपका
स्वामी भवेशानन्द
सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ फरवरी २०२६ अंक २

श्रीरामकृष्ण-स्तुतिः

समाराध्य तन्त्रैर्महाशक्तिमन्त्रैः
समीपागताया जगन्मातुरंके
लसद्दीव्यकान्तिच्छटाभिर्विभान्तं
भजे रामकृष्णं त्रिलोक्यां महान्तम् ।।

– जो तन्त्र-विद्या के महाशक्तिप्रद मन्त्र द्वारा सम्यक् आराधना करके समीप आयी जगदम्बा की गोद में सुशोभित हैं, जो दिव्य कान्ति की छटा से विभासित हैं, तीनों लोकों में महान उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव का मैं भजन करता हूँ।

पुरखों की थाती

हंसः शुक्लो बकः शुक्लः को भेदो बक-हंसयोः।
नीर-क्षीर-विवेके तु हंसो हंसो बको बकः।।८९२।।

– हंस सफेद होता है और बगुला भी सफेद होता है, दोनों के बीच क्या भेद है? (रंग की दृष्टि से दोनों के बीच कोई भेद नहीं, परन्तु) जब जल तथा दूध को अलग करना होता है, दोनों का भेद स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि हंस ही दूध का पानी से अलग कर सकता है, बगुला नहीं।

हर्तुर्न गोचरं याति दत्ता भवति विस्तृता।
कल्पान्तेऽपि न या नश्येत् किमन्यद्विद्यया विना।।८९३।।

– विद्या के सिवा वह ऐसी दूसरी कौन-सी सम्पदा हो सकती है, जो चोरों को नजर नहीं आती, देने से बढ़ती जाती है और सृष्टि के अन्त में भी जिसका नाश नहीं होता?

त्याग एको गुणः श्लाघ्यः किमन्यैर्गुणराशिभिः।
त्यागात् जगति पूज्यन्ते पशुपाषाणपादपाः।।८९४।।

– एकमात्र त्याग ही प्रशंसनीय गुण है। अन्य ढेर सारे गुणों की भी क्या उपयोगिता! एकमात्र इस त्याग-गुण के कारण ही जगत् में पशु, पाषाण, वृक्ष आदि भी पूजे जाते हैं।

ईश्वर प्राप्ति के लिए व्याकुलता होनी चाहिए : रामकृष्ण परमहंस देव

इसी जन्म में ईश्वर को प्राप्त करूँगा। तीन दिन में प्राप्त करूँगा। एक ही बार उनका नाम लेकर उन्हें प्राप्त कर लूँगा। इस प्रकार की तीव्र भक्ति होनी चाहिए, तभी भगवत्प्राप्ति होती है। 'हो रहा है, हो जाएगा' इस प्रकार मन्द भक्ति ठीक नहीं है ।

इस जन्म में न हो, तो अगले जन्म में भगवान को पाऊँगा, यह कैसी बात है! ऐसा ढीला-ढाला सुस्त भाव नहीं रखना चाहिए। 'उनकी कृपा से उन्हें इसी जन्म में प्राप्त करूँगा, इसी क्षण प्राप्त करूँगा' – मन में इस तरह का जोर रखना चाहिए, विश्वास रखना चाहिए। इसके बिना नहीं होता। गाँवों में किसान लोग बैल खरीदने जाकर पहले बैल की पूँछ में हाथ लगाते हैं। कुछ बैल ऐसे होते हैं, जो पूँछ में हाथ लगाने पर कोई विरोध नहीं करते, बल्कि अंग फैलाकर लोटने लग जाते हैं। ऐसा देखते ही किसान लोग समझ जाते हैं कि ये बैल किसी काम के नहीं। और पूँछ में हाथ लगाते ही जो बैल तिलमिलाकर एकदम उठने लगते हैं, उन्हें देखकर वे समझ जाते हैं कि ये खूब काम में आएँगे। इन्हीं में से वे बैल पसन्द कर खरीद ले जाते हैं। ढीला-ढाला भाव अच्छा नहीं। अपने में जोर लाकर, विश्वास के साथ कहो – उन्हें जरूर पाऊँगा, अभी इसी क्षण पाऊँगा' – तभी तो यह सम्भव होगा।

अगर तुम्हें पागल ही बनना है, तो संसार के विषयों के लिये पागल न बन ईश्वर के लिए पागल बनो।

लड़का न होने पर लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, धन-सम्पत्ति नहीं मिली, तो कितनी हाय-हाय करते हैं, किन्तु भगवान् के दर्शन नहीं हुए कहकर कितने जन व्याकुल हो रोते हैं? जो सचमुच भगवान को चाहता है, वह उन्हें अवश्य पाता है।

जो भगवान के लिये व्याकुल होता है, वह खाने-पीने जैसी तुच्छ बातों की चिन्ता नहीं कर सकता।

जिसे प्यास लगी है, वह क्या गंगाजल को गंदला कहकर स्वच्छ पानी के लिए कुआँ खोदता है? जिसे धर्म की तृष्णा नहीं लगी है वही 'यह धर्म ठीक नहीं' 'वह धर्म ठीक नहीं' कहते हुए बकवाद करता फिरता है। यथार्थ तृष्णा होने पर ये सब विचार नहीं उठते।

कृपण व्यक्ति जिस प्रकार सोने-चाँदी के लिये व्याकुल होता है, भगवान् के लिए उसी प्रकार व्याकुल होओ।

भगवान को पाने के लिये ऐसा व्याकुल होना चाहिए, जैसे डूबता हुआ आदमी साँस लेने के लिये होता है।

भगवान को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की व्याकुलता चाहिए, जानते हो? सिर में घाव हो जाने पर कुत्ता जिस प्रकार बेचैन होकर दौड़ता फिरता है, भगवान् के लिए भी उसी प्रकार की छटपटाहट चाहिए।

''हे मन, श्यामा माँ को एक बार ठीक-ठीक आन्तरिकता के साथ पुकार, देखें तो सही वह आए बिना कैसे रह सकती है।'' ठीक-ठीक हृदय से पुकारा जाए तो भगवान दर्शन दिए बिना नहीं रह सकते।

भगवान के प्रति किस प्रकार का आकर्षण होना चाहिए? सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है, उन तीनों को एकत्र मिलाने पर जितना आकर्षण होता है उतना यदि भगवान के प्रति हो, तो उनका लाभ होता है।

सम्पादकीय

ईश्वर-प्राप्ति का द्वार – विश्वास

ईश्वर-प्राप्ति हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यदि कोई वस्तु है, तो वह है विश्वास। किसमें विश्वास? गुरु, मन्त्र और इष्ट में विश्वास, ईश्वर में विश्वास। विश्वास मानव-जीवन के लौकिक और पारलौकिक; दोनों जीवन में परम कल्याणकारी है। जिस प्रकार परस्पर विश्वास से मानव-जीवन में प्रसन्नता और निश्चिन्तता का बोध होता है, उसी प्रकार ईश्वर में विश्वास से मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है और वह ईश्वरीय आनन्द का अधिकारी बनता है तथा ईश्वर-कृपा का पात्र बनता है। श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी भगवान शंकर को विश्वास का प्रतीक मानते हुये कहते हैं –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।

– 'श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशंकरजी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते। '

भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने भी बार-बार अपने भक्तों को ईश्वर के प्रति विश्वास की बात कही है। वे कहते थे, ''जिसमें विश्वास है, उसमें सब है, विश्वास नहीं, तो कुछ भी नहीं है।'' वे यह भी कहते थे, ''यदि तुम ईश्वर-प्राप्ति करना चाहते हो, तो दृढ़ विश्वास के साथ नाम लेते जाओ और सत्-असत् का विवेक किया करो।'' श्रीरामकृष्ण शिव-पार्वती-संवाद का उल्लेख करते हुये कहते हैं – ''माता पार्वती ने भगवान शिव से पूछा – ''भगवन्! सच्चिदानन्द की प्राप्ति का मूल उपाय क्या है? शिवजी ने कहा – 'विश्वास'। मत या पन्थ से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है, जिसे जिस मत की शिक्षा-दीक्षा मिली है, उसे विश्वास के साथ उसी मतानुसार साधना करनी चाहिये।''

विश्वास साधक-जीवन की संजीवनी है। वह साधक की भक्ति को सदा संजीवित और सम्पोषित करता है। लेकिन विश्वास कैसा हो? कहते हैं कि विश्वास अचल और अविचल हो। साधक को अपने गुरु पर दृढ़ विश्वास करना चाहिये, अपने इष्ट पर दृढ़ विश्वास करना चाहिये। विश्वास किसी भी परिस्थिति में विचलित न हो, तब साधक सिद्ध होता है। दृढ़ विश्वास के सम्बन्ध में गोस्वामीजी कहते हैं –

बटु बिस्वास अचल निज धरमा।[१]

– स्वधर्म में अटल विश्वास है, वह अक्षयवट है।

जिस प्रकार अक्षय वट कभी नष्ट नहीं होता। वह किसी भी आँधी-पानी, तूफान से नहीं गिरता। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के विघ्न-बाधा-संशयादि से ईश्वर के प्रति विश्वास न टूटे, वैसा दृढ़ विश्वास चाहिये।

बाधा-विघ्न में अविचल विश्वास

भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, ''पत्थर हजारों वर्षो पानी में पड़ा रहे, तो भी उसके भीतर एक बूँद पानी नहीं घुसता, परन्तु मिट्टी के ढेले में पानी लगते ही वह घुल जाता है। जिसके हृदय में विश्वास का बल है, वह हजारों विघ्न-बाधाओं की परीक्षा से गुजर कर भी हताश नहीं होता, परन्तु अविश्वासी व्यक्ति छोटी-सी बात से ही विचलित हो जाता है।''

भगवान पर दृढ़ विश्वास करके कितने भक्तों ने अपने जीवन में कितने विघ्नों को पार कर लिया, कितने कष्टों को सहन कर लिया, कितने शत्रुओं से बच गये और भगवान के स्नेह-वात्सल्य-प्रेम को प्राप्त किया, उनकी अनन्त कृपा के अधिकारी बन गये। भगवान पर दृढ़ विश्वास कर हनुमानजी ने समुद्र पार कर लिया। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, ''स्वयं श्रीरामचन्द्र जी को समुद्र पार करने के लिये सेतु बाँधना पड़ा, परन्तु हनुमानजी 'जय श्रीराम' कहकर एक ही छलांग में अनायास समुद्र लाँघ गये। विश्वास में कितनी सामर्थ्य है !''

माता शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हुये भगवान श्रीराम कहते हैं –

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।[२]

– मेरे मन्त्र का जप और मुझमें दृढ़ विश्वास, यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है।

विश्वास के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण एक कहानी कहा करते थे। एक आदमी समुद्र पार करना चाहता था। एक साधु ने उसे एक ताबीज देकर कहा – 'इसके बल पर तुम समुद्र पार हो जाओगे।' उस ताबीज को लेकर वह आदमी पानी पर चलते हुये आगे बढ़ने लगा। बीचोंबीच जाकर उसके मन में कौतूहल हुआ कि देखूँ, तो इस ताबीज के भीतर ऐसी क्या चीज है, जिसके बल पर समुद्र पार किया जा सकता है। उसने ताबीज को खोलकर देखा। उसमें एक कागज का टुकड़ा था, जिस पर केवल 'राम' लिखा हुआ था। वह उपेक्षा के साथ बोल उठा, 'बस, यही है? और कुछ नहीं?' जैसे यह संशय-भाव उसमें आया, वैसे ही वह डूब गया। भगवान के नाम पर विश्वास हो, तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है। विश्वास ही जीवन है और अविश्वास मृत्यु।

विश्वास के साथ प्रार्थना से पाप-नाश

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''जीवन भर पाप और नरक की बात क्यों करते हो? भगवान का नाम लो। एक बार कहो, 'हे प्रभो, मुझे जो करना चाहिये था, वह मैंने नहीं किया, जो नहीं करने चाहिये, वही काम किये हैं, मुझे क्षमा करो।' पूरे विश्वास के साथ उनसे प्रार्थना करो, तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे। ''

रावण-वध के बाद सभी देवताओं के द्वारा श्रीराम की स्तुति करके जाने के बाद भाट रूप में चारों वेद वहाँ आकर भगवान का गुणगान करने लगते हैं। वे कहते हैं –

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाई सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। ।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।।[३]

– हे हरि ! जिन्होंने मिथ्या ज्ञान के अभिमान में विशेष रूप से मतवाले होकर जन्म-मृत्यु के भय को हरनेवाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, उन्हें देव-दुर्लभ पद को पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरते देखते हैं।

परन्तु जो लोग सब आशाओं को छोड़कर आप पर विश्वास करके आपका दास होकर रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम के भवसागर से तर जाते हैं। ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं।

विश्वास से पवित्रता

२७ अक्तूबर, १८८२ को श्रीरामकृष्ण देव ने ब्राह्मभक्तों के साथ सत्संग करते समय कहा था – ''ईश्वर के नाम पर इस प्रकार का ज्वलन्त विश्वास होना चाहिये – क्या! मैंने उनका नाम लिया है, अब भी मुझमें पाप रह सकता है! मुझमें भला पाप कैसा! मुझे भला बन्धन कैसा!' कृष्ण किशोर सनातनी हिन्दू था, सदाचारनिष्ठ ब्राह्मण था! एक बार वह वृन्दावन गया था। एक दिन घूमते-घूमते उसे प्यास लगी। उसने एक कुएँ के पास जाकर देखा, एक आदमी खड़ा है। उसने उससे कहा – 'क्यों रे, तू क्या मुझे एक लोटा पानी पिला सकता है? तू कौन जाति है?' वह बोला – 'महाराज, मैं नीच जाति का हूँ, चमार हूँ।' कृष्णकिशोर ने कहा – 'तू शिव शिव कह। ले, अब पानी खींच दे'।''[४]

विश्वास से रोगमुक्त और अनन्त शक्ति-प्राप्ति

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''विश्वास के बल पर रोग दूर करनेवाले वैद्य रोगी से कहते हैं, 'पूर्ण विश्वास के साथ कहो, 'मुझे कोई रोग नहीं है।' इस प्रकार कहते-कहते आत्मविश्वास जाग्रत होकर रोगी का रोग अच्छा हो जाता है। तुम यदि स्वयं को पापी, दुर्बल समझो, तो शीघ्र ही तुम वैसे बन जाओगे। यदि तुम विश्वास रखो कि तुममें अनन्त शक्ति है, तो वास्तव में तुममें शक्ति आयेगी।''

जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही हो जाता है

श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, ''जो सोचता है, 'मैं जीव हूँ', वह जीव ही रह जाता है। जो सोचता है, 'मैं शिव हूँ', वह शिव ही बन जाता है। मनुष्य जैसी भावना करता है, वैसा ही बनता है।''

''जो जैसा चिन्तन करता है, वह वैसा ही बन जाता है। भ्रमर का चिन्तन करते-करते झींगुर भी भ्रमर ही बन जाता है। इसी प्रकार सदा सच्चिदानन्द का चिन्तन करते रहने से मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप ही हो जाता है।'' ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीरामचरितमानस १/१/११ **२.** वही, ३/३५/१ **३.** वही, ७/१२/छन्द११ **४.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, १/८७

श्रीशंकराचार्य और श्रीचैतन्य महाप्रभु : दो मत, लक्ष्य एक

स्वामी ईशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

सामान्यत: वैष्णवों की यह धारणा है कि श्रीमहाप्रभु शंकराचार्यजी के वेदान्त के घोर विरोधी थे। यह धारणा व्यक्तिगत या सम्प्रदायगत नहीं है। वैष्णव-ग्रन्थों में भी कई स्थानों पर उसका उल्लेख है। कई लोगों की धारणा है कि भगवान श्रीचैतन्यदेव ने मायावादी वेदान्तियों के विरुद्ध अभियान चलाया था।

ठाकुर कहते थे, 'अवतार अपरिचित वृक्ष हैं'। इसीलिये सामान्य मानव के लिये अवतार को सम्पूर्ण रूप से जानना सम्भव नहीं है। एक अवतार को एक दूसरे अवतार ही सम्पूर्ण रूप से जान सकते हैं। क्योंकि वे स्वरूपत: अभिन्न होते हैं। इसलिये इस विषय के प्रतिपादन हेतु हम श्रीरामकृष्ण के दृष्टिकोण की सहायता लेगें। श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''चैतन्यदेव का ज्ञान सौरज्ञान है। ज्ञानसूर्य का प्रकाश है। किन्तु उनके भीतर भक्ति-चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योति थी। ब्रह्मज्ञान, भक्ति-प्रेम दोनों ही थे।''[१]

जो लोग श्रीचैतन्यदेव को शंकराचार्यजी के मत का विरोधी मानते हैं, उनमें से कई लोग उन्हें माधवाचार्य के सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानते हैं। क्योंकि कविकर्णपूर ने 'गौरगणोद्देश दीपिका' में श्रीचैतन्यदेव को मध्व सम्प्रदाय के रूप में उल्लेख किया है। परवर्तीकाल में बलदेव विद्याभूषण ने अपनी रचना 'गोविन्द भाष्य' और 'प्रमेयरत्नावली' में गुरु-परम्परा की एक लम्बी तालिका में चैतन्यदेव के परम गुरु माााधवेन्द्र पुरी को उडुपी मठ के पन्द्रहवें गुरु के रूप में उल्लेख किया है। चूँकि माधवेन्द्रपुरी गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के मूल आचार्य हैं (**आचार्यं यस्य कन्दो यति मुकुटमणिर्माधवाख्यो मुनीन्द्रः**)[२], इसलिये उनके द्वारा मध्वसम्प्रदाय में सम्मिलित होने से समग्र गौड़ीय-सम्प्रदाय मध्वसम्प्रदाय के अन्तर्गत हो जायेगा। किन्तु 'गौरगणोद्देश दीपिका' में दी हुई तालिका के साथ उडुपी मठ की तालिका का कोई मेल नहीं है। 'गौरगणोद्देश दीपिका' की तालिका में जहाँ माधवेन्द्रपुरी को पन्द्रहवाँ गुरु कहा गया है, वहाँ उडुपी मठ में रखी हुई तालिका में पन्द्रहवें गुरु का नाम वेद-व्यास तीर्थ है, जो माधवेन्द्रपुरी के बाद के थे। जबकि बारहवें मठाधीश रघुनाथ जी, माधवेन्द्रपुरी के समसामयिक थे। एक अन्य उल्लेखनीय विषय यह है कि मध्वाचार्य सम्प्रदाय के सभी गुरु 'तीर्थ' उपाधिधारी हैं, जबकि माधवेन्द्र जी की संन्यास उपाधि 'पुरी' है। इसलिये सुशील कुमार दे ने अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेन्ट इन बंगाल' में टिप्पणी की है, ''इस तालिका की ऐतिहासिक यथार्थता को सरलता से चुनौति दी जा सकती है।''[३] इसके अतिरिक्त चैतन्यदेव की प्रामाणिक जीवनी में महाप्रभु की संन्यास दीक्षा-ग्रहण का विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत में है –

चब्बिस वत्सर शेष येई माघ मास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिला संन्यास।।[४]

श्रीश्रीचैतन्य भागवत में भी वर्णन मिलता है। श्रीमहाप्रभु स्वयं श्रीनित्यानन्द को कहते हैं –

शुन शुन नित्यानन्द गोसाईं।
ए कथा भांगिबे सवे पंच-जन ठाँई।
एइ संक्रमण उत्तरायण दिवसे।

निश्चय चलिबो आमि करिते संन्यासे।।[५]

अपने संन्यास गुरु के सम्बन्ध में श्रीचैतन्यभागवत में महाप्रभु ने स्वयं कहा है –

इन्द्राणी निकटे काठोया नामे ग्राम।
तथा आछे केशव भारती शुद्ध नाम।।
तार स्थाने आमार संन्यास सुनिश्चित।
एइ पाँच जने मात्र करिबा विदित।।[६]

इसके अतिरिक्त महाप्रभु विनम्रता से स्वयं को सर्वदा 'मायावादी संन्यासी' कहकर ही उल्लेख करते थे –

महाप्रभु कहे शुन भटु महामति।
मायावादी संन्यासी आमी ना जानी विष्णुभक्ति।।[७]

इसलिये श्रीमहाप्रभु के दीक्षागुरु (श्रीमाधवेन्द्रपुरी के शिष्य) श्रीईश्वरपुरी और संन्यासगुरु श्रीकेशव भारती; दोनों ही श्रीशंकराचार्य जी द्वारा स्थापित चतुर्मठ के दक्षिणाम्नाय श्रीशारदा पीठ, शृंगेरी (चैतन्यचरितामृत में उल्लिखित 'सिंहारी मठ') शाखा के संन्यासी थे। क्योंकि शंकराचार्य प्रवर्तित दशनामी संन्यासी सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'पुरी' एवं 'भारती' ये दोनों ही उपाधियाँ दक्षिण भारत के रामेश्वर क्षेत्र में अवस्थित शृंगेरी मठ के 'भूरिवार' सम्प्रदाय की संन्यास-पदवी है। (माधवाचार्य रचित शंकर-दिग्विजय से उद्धृत)

इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्य सम्प्रदाय में और श्रीमाधवाचार्य के मत में तत्त्वगत भेद दृष्टिगोचर होता है। जैसे मध्वाचार्य के मतानुसार श्रीविष्णु सर्वोच्च तत्त्व हैं और सभी अवतार ही भगवान के पूर्ण अवतार हैं। किन्तु चैतन्य-सम्प्रदाय के मतानुसार श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व और पूर्ण अवतार हैं। अन्य अवतार उनके अंश हैं। मध्वाचार्य के मतानुसार ब्रह्म भक्ति से श्रेष्ठ हैं और उच्च वर्ण के भक्तगण ही केवल मोक्ष के अधिकारी हैं। किन्तु चैतन्यदेव के मतानुसार व्रज की गोपियाँ ही भक्ति में श्रेष्ठ और जाति-वर्णनिरपेक्ष सभी भक्त ही समभाव से मुक्ति के अधिकारी हैं। मध्वाचार्य ने गोपियों की स्वर्ग की अप्सराओं से तुलना की है। यह चैतन्य सम्प्रदाय के लिये अक्षम्य अपराध है। क्योंकि गौड़ीय मतानुसार 'राधार प्रेम साध्य शिरोमणि।' – राधा प्रेम साध्य है, शिरोमणि है।

मध्वाचार्य के मतानुसार जीव और ब्रह्म सम्पूर्ण भिन्न हैं। ये कठोर द्वैतवादी हैं। चैतन्य महाप्रभु के मतानुसार जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध भेद और अभेद है। अर्थात् जीव और ब्रह्म दोनों ही चिद्रूप हैं, दोनों चेतना-अंश में अभेद हैं। किन्तु जीव-ब्रह्म का सम्बन्ध अंश-अंशी होने से परिमाण में जीव विभु रूप ब्रह्म के रश्मि-परमाणु रूप है। जैसे अग्निकुण्ड से स्फुलिंग निकलते हैं, वैसे ही ब्रह्म से जीवों की सृष्टि होती है। जिस प्रकार अग्नि से भिन्न स्फुलिंग का कोई अस्तित्व नहीं है, वैसे ही ब्रह्म से पृथक जीवों का कोई अस्तित्व नहीं है। स्फुलिंग अलग होने पर भी मूल अग्नि से उत्तापांश में भिन्नता है। उसी प्रकार जीव और ब्रह्म में भेद भी विद्यमान है। ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से ऐसा भेदाभेद सम्भव होता है। इसीलिये यह सिद्धान्त अचिन्त्य भेदाभेद के नाम से विख्यात है। इसके अतिरिक्त गौड़ीय सम्प्रदाय कहते हैं कि शक्ति और शक्तिमान का सम्बन्ध भेदाभेद का सम्बन्ध है। इसलिये इस दर्शन को अचिन्त्य भेदाभेद कहा जाता है।

यदि मध्वसम्प्रदाय श्रीचैतन्यमहाप्रभु का सम्प्रदाय होता, तो उडुपी में महाप्रभु ने तत्त्ववादी मध्वसम्प्रदाय के आचार्य को दुखित होकर 'तुम्हारा सम्प्रदाय' नहीं कहते। श्रीचैतन्य-चरितामृत में 'तत्त्ववादियों' (मध्व सम्प्रदाय के अनुयायियों) के साथ महाप्रभु के संवाद का उल्लेख है –

प्रभु कहे कर्मी ज्ञानी दुई भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखी सेई दुई चिह्न।।[८]

इसलिये महाप्रभु कभी भी मध्व सम्प्रदाय में नहीं थे। श्रीमत् वल्लभाचार्य के संग वार्तालाप के समय देखा जाता है कि वे शंकराचार्य के मतानुयायी अद्वैतवादी आचार्य श्रीधरस्वामी के श्रीमद्भागवत के टीका को ही प्रमाण मान रहे हैं –

आर दिन बोसिला आसि प्रभु नमस्करि।
सभा ते कहेन किछु मने गर्व करि।।
भागवते स्वामीर व्याख्या करियाछि खण्डन।
लइते ना पारी ताँर व्याख्याते वचन।।
प्रभु हासि कहे स्वामी ना माने जेई जन।
वेश्यारे भीतरे तारे करिये गनन।।[९]

बाद में अपनी भूल समझकर वल्लभाचार्य जी ने क्षमा माँगी। महाप्रभु ने उन्हें कहा –

श्रीधर स्वामी निन्दि निज टीका कर।
श्रीधर स्वामी नाहि मानि एतो गर्व धर।।
श्रीधर स्वामीर प्रसादेते भागवत जानि।
जगत् गुरु श्रीधर स्वामी गुरु करि मानि।।
श्रीधरेर अनुगत ये करे लिखन।

सब लोक मान्य करि करये ग्रहन।।[१०]

हमलोगों ने देखा कि अद्वैतवादी आचार्य श्रीधर स्वामी को स्वयं श्रीचैतन्यदेव ने गुरु से सम्बोधित कर सम्मान दिया है और श्रीधर की टीका को प्रमाणित कहा है। यही महाप्रभु के अद्वैतवाद की धारणा का अखण्ड प्रमाण है।

कई लोग पुरी में सार्वभौम के साथ व्याससूत्र की व्याख्या के प्रसंग में श्रीचैतन्य के विरोध का उल्लेख कर प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि वे शंकराचार्य के मत के विरोधी थे। क्योंकि श्रीचैतन्य-चरितामृत के अनुसार सार्वभौम शंकराचार्यजी के मतानुयायी थे। अब हमलोग श्रीचैतन्यभागवत नामक प्रामाणिक ग्रन्थ से इस विषय पर चर्चा करेंगे। श्रीचैतन्यभागवत एक प्राचीन ग्रन्थ है, जिसका उपादान स्वयं नित्यानन्द प्रभु ने वृन्दावनदास को दिया था। हमें यह स्मरण रखना होगा कि जब सार्वभौम के साथ चैतन्यमहाप्रभु की भेंट हुई थी, तब नित्यानन्द वहाँ उपस्थित थे। स्वयं श्रीचैतन्यचरितामृत के प्रणेता ने अपने ग्रन्थ के विभिन्न स्थानों पर श्रीचैतन्यभागवत की बहुत प्रशंसा की है, उसकी अभ्रान्तता को स्वीकार किया है। श्रीचैतन्यभागवत में देखा जाता है कि सार्वभौम के साथ चैतन्यमहाप्रभु की वेदान्त-चर्चा का कोई उल्लेख नहीं है। जबकि अल्पायु में श्रीचैतन्य महाप्रभु के संन्यास लेने पर सार्वभौम का विरोध था। उन्होंने महाप्रभु के संन्यास लेने के विरुद्ध में कहा था –

बूझ देखि विचारिया कि आछे संन्यासे।
प्रथमेइ बद्ध हय अहंकार पाशे।।[११]

अद्वैतवादी सर्वदा 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा चिन्तन करते हैं, जो सार्वभौम के मतानुसार एक महा अपराध है। चैतन्यभागवत में सार्वभौम कहते हैं –

जीवेर स्वभाव-धर्म ईश्वर भजन।
ताहा छाड़ि आपनारे वले नारायन।।
गर्भवासे ये ईश्वर करिलेन रक्षा।
याहार प्रसादे होइले बुद्धि ज्ञान शिक्षा।।
यार दास्य लागि शेष-अज-भव-रमा।
पाइयाओ निरवधि करेन कामना।।
सृष्टि स्थिति प्रलय याहार दास्य करे।
लज्जा नाहि हेनो प्रभु बोले अपनारे।।[१२]

इसलिये हमलोग सार्वभौम के दशनामी सम्प्रदाय के प्रति अश्रद्धा ही देखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सार्वभौम कभी अद्वैतवादी नहीं थे। सार्वभौम के मतानुसार शंकराचार्यजी, जो अपने पथावलम्बियों को सदा 'नारायण' उच्चारण करने को कहते हैं, वह भक्ति-साधना अंग-विशेष है। देखा जाता है कि महाप्रभु ने इसका अनुमोदन किया है। इसलिये वेदान्त के शंकरभाष्य को लेकर उन लोगों में कोई पठन-पाठन, तर्क-वितर्क नहीं हुआ। यदि हम चैतन्यचरितामृत का अनुसरण करें, तो देखते हैं कि श्रीचैतन्य शंकराचार्यजी के मत को पुनः यथार्थ रूप से स्थापित कर रहे हैं।

शंकराचार्यजी ने अपने व्याससूत्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में ब्रह्म के सविशेष और निर्विशेष अवस्था का वर्णन किया है। शंकराचार्यजी के मतानुसार अज्ञानाच्छन्न जीवों के लिये उपासना की अत्यन्त आवश्यकता है। इसीलिये उन्होंने अपने शारीरकभाष्य में लिखा है – '**तदनुग्रहहेतुके नैव च विज्ञाने-मोक्षसिद्धः**।'[१४]

जीव-ब्रह्म का एकत्व ज्ञान जो मुक्ति है, वह एकत्व ज्ञान भी ईश्वर के अनुग्रह के बिना सम्भव नहीं है। अर्थात् जीव और ब्रह्म का एकत्व ज्ञान ईश्वर-कृपा-सापेक्ष है। यह एकात्मज्ञान ही जीव की परम गति है। किन्तु इसके बाद जितना दिन साधक जीवित रहेगा, उतने दिनों तक सविकल्प समाधि में साधक सभी वस्तुओं में ब्रह्म-दर्शन करेगा। जैसे – ''**अत्र सविकल्पकः नाम ज्ञातृज्ञानादि-विकल्प-लय-अनपेक्षया अद्वितीय-वस्तूनि तदाकाराकारितया चित्तवृत्तेः अवस्थानम्।।**[१५] अर्थात् सविकल्प समाधि में ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय इस विकल्प के ज्ञान का लोप नहीं होने पर भी अद्वितीय वस्तु में अखण्डाकार चित्तवृत्ति का अवस्थान होता है। ''**तदा मृण्मय गजादिभाने अपि मृदुभानवत् द्वैतभाने अपि अद्वैतं वस्तु भासते**।।[१६] अर्थात् उस समय मिट्टी हाथी में हाथी के ज्ञान रहने पर भी मिट्टी का ज्ञान रहता है, वैसे ही द्वैत-ज्ञान रहने पर भी अद्वैतज्ञान का अभाव नहीं होता है। अर्थात् निर्विकल्प समाधि में साधक जीव और ब्रह्म के एकत्व का बोध करता है और सविकल्प समाधि में सर्वभूतों में ब्रह्म-दर्शन करता है।

श्री चैतन्यमहाप्रभु और रामानन्द में साध्य और साधन-तत्त्व के सम्बन्ध में चर्चा के समय हम देखते हैं 'राधा का प्रेम साध्य शिरोमणि'[१७] का भाव है। इसलिये श्रीचैतन्य परम्परा में जीव का परम लक्ष्य कान्ता भाव या व्रजगोपियों का भाव है – '**कान्ताप्रेम सर्वसाध्य सार**।'[१८] व्रज-गोपियों

में राधा ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जब राधा श्रीकृष्ण से मिलती हैं, तब वे श्रीकृष्ण से एक हो जाती हैं, मानो दो मन को मिला दिया गया हो।' इस अवस्था का वर्णन करते समय रामानन्द राय कहते हैं – न सो रमणी, ना हम रमणी। दुँहु मन मनोभव पेशल मानि।।'[१९] अर्थात् वह स्त्री नहीं है और मैं पुरुष नहीं हूँ। दोनो मन को मदन ने मानो पीसकर एक कर दिया है। इसलिये मधुर-भाव की चरम अवस्था में प्रेमास्पद के साथ पुनर्मिलन अभेद उपलब्धि है। यही मधुर-भाव की चरम अवस्था है। विरह-काल में वे जो देखती हैं, उसमें ही उनको श्रीकृष्ण का दर्शन होता है या अपने को ही श्रीकृष्ण बोध करती हैं। जैसे –

कृष्णमयी कृष्ण यार भीतरे बाहिरे।
याहा याहा नेत्र पड़े, ताहा ताहा कृष्ण स्फुरे। ।
उद्घूर्णा विरह चेष्टा दिव्योन्माद नाम।
विरहे कृष्णस्फूर्ति आपनाके कृष्ण जान।।[२०]

यहाँ अद्वैत भाव की बात कही गयी है। क्योंकि यहाँ साधक अद्वैतवादियों जैसा सर्वत्र ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का दर्शन करते हैं। यहाँ तक कि अपने में भी दर्शन करते हैं। श्रीरामकृष्ण मधुर-भाव की अवस्था की व्याख्या करते समय कहते हैं – ''ईश्वर के प्रति प्रेम नहीं होने से ऐसी अवस्था नहीं होती है। जब तीव्र प्रेम होता है, तभी चारों ओर ईश्वरमय दर्शन होता है। बहुत पीलिया होने से चारों ओर पीला दिखता है। तब वे ही मैं हूँ, यह बोध होता है। शराबी को अधिक नशा होने पर कहता है, मैं ही काली हूँ। गोपियाँ प्रेमोन्मत्त होकर कहने लगीं, मैं कृष्ण हूँ। उनका दिन-रात चिन्तन करने से उनका चारों ओर दर्शन होता है। जैसे दीप-शिखा की ओर एकदृष्टि से देखने पर थोड़ी देर बाद चारों ओर ज्योतिर्मय देखा जाता है।'' मणि सोचते हैं कि वह ज्योति तो वास्तविक ज्योति नहीं है। ठाकुर तो अन्तर्यामी हैं। उन्होंने कहा – ''चैतन्य का चिन्तन करने से कोई जड़ नहीं हो जाता है।''[२१] गीता में भगवान कहते हैं –

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। १८/५५

– उस भक्ति के द्वारा वह हमारे सर्वव्यापी स्वरूप को तत्त्वत: जान लेता है और मेरे स्वरूप को जानने के बाद वह मुझमें प्रवेश कर जाता है।

इस अद्वैतावस्था की उपलब्धि भक्तिमार्ग की चरमावस्था होने पर भी प्रवर्तक हेतु उपास्य-उपासक भाव ही मंगलकारी है। क्योंकि योग्य अधिकारी नहीं होने पर अद्वैत भाव साधक-जीवन में विघ्न लाता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – ''सेव्य-सेवक भाव बहुत अच्छा है। देखो, गंगा की ही तरंग होती है, तरंग की गंगा कोई नहीं कहता है। 'मैं ही वही हूँ, यह अहंकार अच्छा नहीं है। देह-बुद्धि रहते जो यह अहंकार करता है, उसकी विशेष हानि होती है। वह आगे नहीं बढ़ पाता, क्रमशः उसका पतन हो जाता है।''[२२]

इसके अतिरिक्त भक्त कई प्रकार से भगवान का रसास्वादन करना चाहता है। अभेद अवस्था की प्राप्ति नहीं करना चाहते। ठाकुर कहते थे – ''भक्त ब्रह्मज्ञान नहीं चाहते हैं। मैं दास हूँ, तुम स्वामी हो, मैं पुत्र हूँ, तुम माँ हो, यह अहंकार रखना चाहते हैं। चीनी होना नहीं चाहता, चीनी खाना चाहता हूँ।''[२३] इसीलिये चैतन्यचरितामृत में महाप्रभु कहते हैं –

सायुज्य शुनिते भक्तेर हय घृणा भय।
नरक वांछेय तबू सायुज्य ना लय।।[२४]

इससे यह प्रमाणित होता है कि सायुज्य असम्भव वस्तु नहीं होने पर भी भक्त उसे नहीं चाहता।

अवतार युग के प्रयोजनानुसार सनातन सत्य को युगोपयोगी बनाकर व्याख्या करते हैं। ठाकुर कहते थे – ''कलियुग में भक्तियोग।''[२५] और ''चैतन्यदेव भक्ति के अवतार हैं। जीव को भक्ति सिखाने आये थे।''[२६] इसलिये भक्ति के अवतार श्रीचैतन्यदेव ने युग-प्रयोजनानुसार भक्ति को प्रधानता दी। शंकराचार्यजी के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होने पर भी उनके विचारों में कुछ स्वतन्त्रता थी। जैसे शंकराचार्यजी के मतानुसार परम तत्त्व निर्विशेष ब्रह्म है। गौड़ीय मतानुसार परम तत्त्व श्रीकृष्ण हैं। ज्ञानी का ब्रह्म श्रीकृष्ण की अंग-कान्ति है अर्थात् अनुभा। शंकराचार्यजी के मतानुसार ब्रह्म सत्य है। जगत रज्जु-सर्प के भ्रम के सदृश मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, अन्य कुछ नहीं है। किन्तु गौड़ीय मतानुसार ब्रह्म के सदृश जगत भी सत्य है। किन्तु थोड़ा गहन चिन्तन करने पर देखेंगे कि गौड़ीय मत में जगत-सत्य का कारण भगवत्सेवा है। शंकराचार्यजी के मतानुसार जगत् मिथ्या प्रमाण-आग्रह के कारण ब्रह्म की सत्यता प्रमाणित करने के लिये है। इसलिये दोनों के विचार

शेष भाग पृष्ठ ७१ पर

महाशिवरात्रि विशेष

शिवरात्रि का महत्त्व

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

हम भगवान शिव का ध्यान करते हैं, जो शुद्धता और सत्य का प्रतीक है। हम महादेव को नमन करते हैं, जो सभी देवताओं में सर्वोच्च और देवों के देव हैं। वे रुद्र हमें ज्ञान और प्रकाश प्रदान करें।

इस महीने में हम शिवरात्रि में शिवजी की पूजा करते हैं। तो आओ, हम आज शिव के बारे में जानेंगे। भगवान शिव, हिन्दू धर्म में सबसे पूजनीय देवताओं में से एक हैं। वे त्रिमूर्ति के अंश हैं, जिसमें ब्रह्मा और विष्णु भी हैं। शिव को विनाश और परिवर्तन का देवता माना जाता है, जो सृष्टि के पालन और विनाश के चक्र को दर्शाते हैं। शिव अनादि हैं, कालातीत यानि वे समय से परे हैं। वे अनन्त भी हैं, यानी उनकी कोई सीमा नहीं है। इन गुणों के कारण भगवान शिव को परम शक्ति माना जाता है।

भगवान शिव का प्रतीकात्मक महत्त्व

तीसरी आँख – शिव की तीसरी आँख ज्ञान और सत्य का प्रतीक है, यह अज्ञानता का विनाश करती है। यह आज्ञा चक्र पर स्थित होती है। यह अत्यधिक क्रोध का प्रतीक है, जब शिव अत्यन्त क्रोधित होते हैं, तब यह आँख खुलती है और विनाशकारी ऊर्जा उत्पन्न करती है।

त्रिशूल – यह तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) का प्रतीक है, यह तीनों लोकों पर नियंत्रण करता है।

सर्प – उनकी कुंडलिनी शक्ति का और सजगता का प्रतीक है।

गंगा – सृष्टि का रक्षण, पवित्रता और मोक्ष प्रदान करती हैं।

चन्द्रमा – यह काल (सृजन और विनाश) का, शान्ति और शीतलता का प्रतीक है और यह मानसिक नियंत्रक भी है।

नन्दी – यह भक्ति और शक्ति का प्रतीक है। यह शिव के निवास और सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम का प्रतीक है।

महाशिवरात्रि क्यों मनाई जाती है, इस सम्बन्ध में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणायें हैं। महाशिवरात्रि का अर्थ है शिव की रात। महाशिवरात्रि शिव के प्रति भक्ति और श्रद्धा को प्रकट करती है। पौराणिक कथा के अनुसार फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि पर पहली बार भगवान शिव ज्योतिर्लिंग में प्रकट हुए थे और इसे महाशिवरात्रि के रूप में मनाया गया। अर्थात् निराकार से साकार रूप में अवतरण की रात्रि ही महाशिवरात्रि है। इसी दिन शिव और माता पार्वती का विवाह हुआ था, भगवान शिव ने वैराग्य को त्याग कर देवी पार्वती संग विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया था। इसी उपलक्ष्य में महाशिवरात्रि का पर्व मनाया जाता है।

महाशिवरात्रि का वैज्ञानिक महत्त्व – फरवरी-मार्च के दिनों में पृथ्वी का उतरी गोलार्द्ध एक विशेष स्थिति में होता है। महाशिवरात्रि के समय पृथ्वी का उतरी गोलार्द्ध इस तरह संरेखित होता है कि मनुष्य के शरीर में ऊर्जा का प्राकृतिक प्रवाह ऊपर की ओर प्रवाहित होती है, जिससे आध्यात्मिक उन्नति सरल हो जाती है। इस रात जागरण, उपवास करने और सीधे बैठने से शरीर का शुद्धिकरण होता है, पाचन क्रिया सुधरती है और शरीर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है, जिससे समग्र स्वास्थ्य में सुधार होता है।

समुद्र-मंथन में जो विष निकला था, शिवजी ने उसका पान कर लिया था और माता पार्वती उनके गले में हाथ रखकर उसे वहीं रोककर रखती हैं। इससे उनका कण्ठ नीला पड़ जाने के कारण उन्हें नीलकण्ठ भी कहते हैं। समुद्र-मंथन की इस घटना के उपलक्ष्य में और भगवान शिव को धन्यवाद देने के लिये प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि का त्यौहार हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

पूरे नियम, श्रद्धा, विश्वास, शुद्धता से किया गया महाशिवरात्रि का पर्व शरीर में सकारात्मक ऊर्जा को बढ़ाता है, जिससे पढ़ाई तथा किसी भी कार्य को करने में मन एकाग्र होता है और हमें सफलता प्राप्त होती है। स्वामीजी भी कहते थे, स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास होता है। स्वामी विवेकानन्द स्वयं शिव-स्वरूप थे। हम उनके जीवन में भी शिव की आराधना करते, शिव के प्रति उन्हें भक्ति करते देखते हैं। ○○○

रामगीता (५/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

भक्ति की परिपूर्णता ज्ञान और भक्ति के सामंजस्य में है। मानस में इसकी बार-बार दुहाई दी गई। रामायण के प्रारम्भ में ही गोस्वामीजी ने कह दिया, यहाँ जो कुछ लिखा हुआ है –

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
बालकाण्ड/श्लोक/७

तो पुराण से, आगम से, शास्त्रों से जो सम्मत है, वही रामकथा है। इसका अभिप्राय यह है कि परिपूर्णता सचमुच ज्ञान-भक्ति-वैराग्य के सामंजस्य में है और यह हो सकता है। गोपियों के जीवन में भी यही है। वे उस रस के परिपाक में आनन्द बहुत ले रही हैं, लेकिन वियोग होते ही याद आ गया – **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्** – आप केवल किसी गोपी के पुत्र ही थोड़े हैं? **सकलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्** – आप समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। इस सन्दर्भ में आप उनके चरित्र पर विचार करें। अब यह भ्रम हो जाता है कि गोपियाँ तो पर-स्त्री हैं और श्रीकृष्ण उनके साथ रास करें, विहार करें ! तो वे एक सूत्र देती हैं कि व्यक्ति के बारे में तो वे हैं ही नहीं। वे तो समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। यही है ज्ञान का पक्ष। वह ज्ञान का जो पक्ष है, वह कभी किसी में अधिक हो, किसी में कम हो, पर उसकी आवश्यकता सबको पड़ती है। यहाँ तक कि दशरथजी को भी पड़ी। अन्त में तो उन्होंने **हा रघुनन्दन प्रान पिरीते** कहते हुये श्रीराम के वियोग में प्राण ही छोड़ दिया। किन्तु कौशल्याजी ने प्राण नहीं छोड़ा। उसका भी कारण यही है। इस रूप में राजा के मन में पुत्र-वात्सल्य और उसके वियोग में जो कष्ट की अनुभूति है, उससे वे शरीर छोड़ देते हैं। उस भावना का यह संकेत आता है। दशरथजी इन्द्र के मित्र हैं और वहीं स्वर्ग में निवास करते हैं। युद्ध समाप्त हुआ, तो इन्द्र ने प्रसन्न होकर महाराज दशरथ से कहा, आज तो प्रभु ने लंका में रावण का वध कर दिया। दशरथजी प्रभु शब्द तो भूल गए और सोचने लगे, मेरे बेटे ने रावण को मार दिया? अब इन्द्र बेचारे बोले, वे आपके पुत्र थोड़े ही हैं। जब इन्द्र रामजी से मिलने चले, तो दशरथजी की इतनी ममता बढ़ी कि बोले, मैं भी चलूँगा। इन्द्र ने कहा, अच्छा महाराज, चलिए। इन्द्र लेकर आए और भगवान श्रीराम ने ज्यों ही देखा कि पिताजी स्वर्ग से आए हुए हैं, तो खड़े हो गये।

यह रामायण ग्रन्थ बड़ा रसीला और बड़ा तात्त्विक है। ये दशरथ मनु हैं। जब भगवान महाराज मनु के सामने आए, तो भगवान राम अपने वाम भाग में श्रीसीता जी को लेकर आए। पर जब दशरथजी के सामने इस समय आए, तो सीता जी थीं वहाँ, पर सीताजी को भगवान राम ने साथ में चलने के लिए नहीं कहा। पिताजी का स्वागत करने के लिए लक्ष्मणजी को साथ में लेकर आये –

अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। ६/१११/२

इसमें एक रहस्य है। जब लीला का विस्तार करना है, तो सीताजी की आवश्यकता है और जब लीला को समेटना है, तब वैराग्य की आवश्यकता है। लक्ष्मणजी मूर्तिमान वैराग्य हैं। यदि वैराग्य लाना है, तो उस समय भक्तिरस को थोड़ा दूर ही रखना चाहिए। राम ने पिताजी के चरणों में वंदन किया। बड़े प्रसन्न होकर श्रीराम को आशीर्वाद दिया।

अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा।
आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा।। ६/१११/२

लेकिन नाटक समाप्त करने का समय आ गया।

दशरथजी इतने दिन पुत्र की भावना में डूबे रहे। प्रभु ने सोचा, आगे क्या होगा? ये तो मुझे अब भी पुत्र ही मान रहे हैं। मुझे देखने के लिए स्वर्ग से भी चले आए। कहीं ऐसा न हो कि राजतिलक करने अयोध्या चलें। तब तो इस नाटक का कोई अन्त ही नहीं होगा। अब जरा नाटक के दृश्य को बदलना चाहिए। श्रीराम ने प्रणाम करते समय अपने नेत्रों को दशरथजी की आँखों से मिला दिया। रामायण का यही तत्त्वदर्शन है। गोस्वामीजी शब्द लिखते हैं –

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना।
चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।। ६/१११/५

जब पिताजी से आँखें मिलीं, तो मानो ज्ञान की आँखें मिल गईं। ज्ञान की दृष्टि मिल गई। अब दृश्य बदल गया। जब दशरथजी आए थे, तो प्रभु ने दण्डवत प्रणाम किया था। लेकिन जाते समय राम दण्डवत प्रणाम नहीं करते। तब?

बार बार करि प्रभुहि प्रनामा।
दसरथ हरषि गए सुरधामा।। ६/१११/८

दशरथजी ने बारम्बार प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। हे परात्पर प्रभु... और हर्षित होकर तभी जा पाए, जब वे ज्ञान की स्थिति में आए। उन्होंने राम को परात्पर रूप में देखा।

इसलिए इस रस के परिपाक में यह पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है कि अन्त में ज्ञान की अपेक्षा है, वैराग्य की अपेक्षा है। इसलिए पूरे रामचरितमानस के पात्रों में सर्वत्र इसका संकेत करने की चेष्टा की गई।

परशुरामजी महाराज के प्रसंग को जाति-वाति के सन्दर्भ से देखना, तो अपनी दृष्टि को ही बहुत भ्रामक बना लेना है। वहाँ तो सब राजा प्रणाम करते हैं। गुरुवशिष्ठ तो धन्य हो ही चुके हैं। उसके पश्चात् श्रीराम को पाकर विश्वामित्र धन्य होते हैं और वे सारी विद्याओं को श्रीराम को अर्पित कर देते हैं –

आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि।।
१/२०९/०

भगवान राम मारीच को दूर फेंक देते हैं, सुबाहु को जला देते हैं, ताड़का को पहले ही मार चुके हैं। प्रभु ने दोष को दूर किया, दुख को जलाया और दुराशा को मिटाकर उसको अपने आप में विलीन कर लिया, एकाकार कर लिया। परम प्रसन्न विश्वामित्रजी और महाराज श्रीजनक, जो अपने आप को परम विरागी मानते थे, पर प्रभु ने जान-बूझकर एक अवसर दे दिया। जनक तो परीक्षा ले रहे थे, पर विनोदी प्रभु ने कहा कि राजन, मेरी परीक्षा के पहले तुम तो परीक्षा दे दो। तुम क्या हो? विरागी। जब धनुष नहीं टूटा, तो विरागी जनक नहीं दिखाई दे रहे हैं। ममता से भरे हुए रागी जनक बोलने लगे। गोस्वामीजी ने कहा –

नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने।
बोले बचन रोष जनु साने।। १/२५०/६
दीप दीप के भूपति नाना।
आए सुनि हम जो पनु ठाना।। १/२५०/७
देव दनुज धरि मनुज सरीरा।
बिपुल बीर आए रनधीरा।। १/२५०/८
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।
तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।। १/२५१/२

और तब आँखों में आँसू आ गया।

अब जनि कोउ माखै भट मानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी।। १/२५१/३।।

क्या करूँ ?

सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ।
कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ।।१/२५१/५

बेटी बिना विवाह के रह जायेगी। प्रतिज्ञा छोड़ते नहीं बनती। प्रभु मन्द-मन्द मुस्कुराए। अच्छा, तो विरागी जी के आँखों में आँसू भी आ गया और पुत्री के विवाह के लिए चिन्तित भी हो गए हैं। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा छोड़ नहीं पा रहे हैं। इतने बड़े त्यागी हैं, पर पुण्य नहीं छोड़ पा रहे हैं। जान-बूझकर परिस्थिति उत्पन्न कर दिया, तो विरागी जी को जो थोड़ा सात्त्विक अभिमान विराग का था, वह दूर हो गया। दूर हो जाने के बाद तो गुरुजी बैठे ही थे। उन्होंने सोचा, अब इनका भी कल्याण करो।

उठहु राम भंजहु भवचापा।
मेटहू तात जनक परितापा।। १/२५३/६

मानो मेरा कार्य तो पूर्ण हो ही गया, अब इनका कार्य भी तो पूर्ण करो। जब धनुष टूट गया, तब राजा जनक के मुँह से शब्द निकला कि पहले मैं समझता था कि मैं कृतकृत्य हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, पर आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि इन दोनों भाइयों ने सही अर्थों में मुझे कृतकृत्य बनाया।

जनक धन्य हो गये। सीताजी को समर्पित करते हुए भी, मैं पिता हूँ, पुत्री को दे रहा हूँ, यह भाव नहीं है। वे तो उनकी शक्ति हैं। कृपा करके यहाँ आईं और उन्हीं की वस्तु उन्हें देना, इसमें मेरा क्या समर्पण है ! बीच में परशुरामजी महाराज आये। मानो विश्वामित्रजी ने देखा, दो का तो कल्याण हो गया, अब तीसरे आ गए। वे तो बिल्कुल बराबरी वाले हैं। इसलिए विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मण को लेकर तुरन्त पहुँच गये, जहाँ पर परशुरामजी हैं। विश्वामित्रजी और परशुरामजी सम्बन्धी भी हैं। दोनों महान हैं। दोनों गले मिले –

पद सरोज मेले दोउ भाई। १/२६८/६

तब विश्वामित्रजी ने श्रीराम-लक्ष्मण जी से कहा कि परशुरामजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम करो। प्रभु ने और लक्ष्मणजी ने बड़ी श्रद्धा से परशुरामजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। एक दृश्य बदल गया, जो कभी देखने को नहीं मिला था। जनक तो आश्चर्यचकित हो गये। श्रीराम को देखा, तो देखते ही रह गये –

रामहि चितइ रहे थकि लोचन।
रूप अपार मार मद मोचन।। १/२६८/८

ऐसा दिव्य सौन्दर्य? लक्ष्मणजी को देखकर ऐसा लगा कि ऐसा सुन्दर तो भाई आज तक ब्रह्माण्ड में हमने नहीं देखा! आश्चर्य था! सौन्दर्य की ओर आकर्षण। उन्हें लगा कि यही अवसर है, अब पुत्री को भी आशीर्वाद दिला दें। उन्होंने श्रीसीताजी की सखियों को आदेश दिया कि इसी समय सीताजी को लेकर आओ और परशुरामजी के चरणों में प्रणाम कराओ। महाराज इस समय प्रसन्न हैं। गोस्वामीजी ने कहा कि सखियाँ श्रीसीताजी को लेकर आईं –

आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं।
निज समाज लै गईं सयानीं।। १/२६८/८

श्रीसीताजी ने जाकर प्रणाम किया, तो सीताजी को भी आशीर्वाद दे दिया। लगा कि नाटक का अन्त बड़ा सुखद होने जा रहा है। आए थे क्रोध में, श्रीराम-लक्ष्मण, सीता को देखकर प्रसन्न हो गए। अब तो समाप्त हो गई बात। लेकिन समाप्त नहीं हुई। वहीं पर दर्शन आ गया। क्यों नहीं समाप्त हुई? गोस्वामीजी ने कहा कि जब तक श्रीराम-लक्ष्मण-सीता को देख रहे थे, तब तक तो आनन्द ही आनन्द था, क्रोध का कहीं लेश नहीं था। पर उनको देखते-देखते उनकी दृष्टि पड़ गई। कहाँ?

देखे चापखंड महि डारे। १/२६९/२

जो खंडित धनुष था, वह दिखाई पड़ गया। ईश्वर कौन है? ब्रह्म कौन है? बोले –

ग्यान अखंड एक सीताबर। ७/७७/४

ब्रह्म राम अखण्ड हैं। जब तक अखण्ड पर दृष्टि थी, तब तक क्रोध का लेश नहीं था। पर अखण्ड को छोड़कर जब खण्ड को देखा, तो क्रोध आ गया। यही सूत्र है, मानो हम उस समय शान्त हो जाते हैं, जब हम अखण्ड में यह अनुभव करें कि –

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।। १/७/२

या हनुमान से प्रभु कहते हैं –

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।

लोग समझते हैं कि हम अनन्य हैं। जो राम के भक्त हैं, वे कृष्ण के पास नहीं जायेंगे, जो कृष्ण के भक्त हैं, वे राम-मन्दिर में नहीं जायेंगे। यहाँ तक कि हम इन गुरुजी के शिष्य हैं, तो दूसरे गुरुजी के पास चले जायेंगे, तो हमारी अनन्यता में कमी आ जायगी। इन अनन्यों की क्या विडम्बना है! हनुमानजी से प्रभु ने कहा कि हनुमान! भक्त को अनन्य होना चाहिए। हनुमानजी ने पूछा, महाराज, अनन्य का अर्थ क्या है? कहते हैं –

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।। ४/३/०

सारे ब्रह्माण्ड में जो मुझे देख रहा है, वही अनन्य है। यह दिव्य रूप अनन्यता, तभी आती है, जब व्यक्ति अखण्ड को देख पाता है। श्रीराम अखण्डत्व का दर्शन कराते हैं। अखण्ड ही खण्ड की सारी समस्याओं का समाधान है। इस वार्तालाप में जो समाधान दिया गया, इसकी चर्चा कल करेंगे।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ! **(क्रमशः)**

जीवन भर पाप और नरक की बात क्यों करते रहते हो? भगवान का नाम लो। एक बार कहो, ''हे प्रभो, मुझे जो करना चाहिए था, वह मैंने नहीं किया, जो नहीं करने चाहिए वही काम किए हैं, मुझे क्षमा करो!'' पूरे विश्वास के साथ उनसे प्रार्थना करो, तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जाएँगे।

– श्रीरामकृष्ण देव

हनुमानजी ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक श्रृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

डिम ... डिम ... डिम ...

''आओ सुनो हनुमानजी की अद्भुत कथा'', गली के एक कोने में खड़े होकर ढोलक बजाते हुए गवैया चिल्लाया। नरेन इकट्ठी हो रही उस छोटी-सी भीड़ में शामिल होने के लिए घर से बाहर भागा।

सामने की ओर ढकेलते हुए, उसने बूढ़े आदमी की ओर देखा और पूछा, ''हनुमान निडर थे, है न?''

''हाँ,'' उत्तर मिला। ''वे इतने निडर थे कि सूर्य को फल समझकर उड़कर उसके पास पहुँच गये और उसे निगलने की कोशिश की...''

''वे बहुत भूखे रहे होंगे,'' नरेन ने उत्तर दिया। गवैया मुस्कुराया। घुँघराले बाल तथा चमकदार आँखोंवाला यह छोटा बालक बजरंग बली की तरह ही उत्साही लग रहा था।

'एक दिन..,' वह बोलने लगा। ''हनुमान की माँ उसे खोजने के लिए गयीं, लेकिन उसे कहीं नहीं पा सकीं ...। उन्हें चिन्ता सताने लगी ...। उनका लड़का हमेशा परेशानी में पड़ जाता है और वे सोचने लगीं कि कहीं वह समस्या में तो नहीं फँस गया ...।''

नरेन की आँखें जोश से बड़ी-बड़ी हो गईं और उसने अपनी साँसें रोक लीं।

''अचानक हनुमान की माँ एक चिल्लाहट सुनी और उन्होंने एक आदमी को अपनी ओर दौड़ते हुए देखा। क्या बात है? उन्होंने उससे पूछा। वह रोता हुआ बोला, तुम्हारा बेटा...। वह मेरे बगीचे में केले खा रहा है। ''

''आह, क्या शरारती बालक है!'' भीड़ हँसने लगी। कहानीकार ने धीरे से नरेन के कान में कहा, ''यदि तुम कभी हनुमान से मिलना चाहते हो, तो केले के बगीचे में जाना ... वे केला खाना बहुत पसन्द करते हैं, तुम उनको वहाँ पर हमेशा पाओगे ...''

''हमारे पड़ोस में एक केले का बगीचा है'' कहते हुये नरेन चिल्लाया और मुड़ा। वह पूरा रास्ता दौड़ता हुआ, एक साँस में बगीचे में पहुँच गया। इससे उसका चेहरा लाल हो गया।

केले के बड़े-बड़े पत्ते दोपहर के सूर्य की धूप से फल की रक्षा करते हैं। ''हनुमानजी यहाँ अवश्य होंगे,'' नरेन बड़बड़ाया। ''उनके लिए खाने को बहुत है ...'' और सभी वृक्षों की ओर देखते हुए भगवान को पुकारते हुए ऊँचे स्वर में ढूँढ़ने लगा। पूरे बगीचे का चक्कर लगाने के बाद नरेन ने निर्णय लिया कि वह प्रतीक्षा करेगा। ''अभी बहुत गर्मी है ... मुझे विश्वास है कि जब सूरज डूबने लगेगा, तो हनुमानजी आएँगे ...'' केले से लदे एक पेड़ देखकर किसी अचानक क्रिया-कलाप को देखने के लिए वह उसके नीचे बैठ गया।

सूरज क्षितिज के नीचे डुबकी लगाने लगा, अँधेरा धीरे-धीरे बगीचे में प्रवेश करने लगा। नरेन के लिए देखना मुश्किल हो रहा था। तो भी वह बायीं और दाहिनी ओर, डालियों में और वृक्षों के पीछे ढूँढ़ता रहा। ''जल्दी आओ हनुमानजी!'' उसने पुकारा। ''मैं अधिक देर नहीं रुक सकता... मेरी माँ को चिन्ता हो रही होगी ...'' लेकिन उसने केवल घास में झींगुर की आवाज और एक पेड़ पर एक उल्लू की आवाज सुनी। जब तारे निकले और चाँद आसमान में ऊँचा उठ गया, तो नरेन फूट-फूट कर रोने लगा। वह उदास हो इधर-उधर देखा और धीरे-धीरे चला गया।

''नरेन ..'' विश्वनाथ दत्त रोते हुए बालक की ओर लपके।

"कहाँ थे इतने समय से? हमलोग बहुत चिन्तित थे। "

'बाबा,' नरेन अपने पिता की ओर हाथ बढ़ाता हुआ।

"क्या हुआ? तुम क्यों रो रहे हो?" विश्वनाथ ने उसे अपनी बाहों में भर लिया।

"हनुमान नहीं आए बाबा," नरेन ने रोते हुए कहा। "मैंने प्रतीक्षा की! उनकी बहुत प्रतीक्षा की, लेकिन वे बगीचे में नहीं आए। "

"ओह, ऐसा क्या," विश्वनाथ ने धीरे से उसके आँसू पोंछे। "नरेन ! क्या तुमने ऐसा सोचा कि हनुमानजी का आज का कार्यक्रम व्यस्त रहा होगा?"

"ऐसा कैसे बाबा?"

"देखो, भगवान राम विश्व की देखभाल करते हैं। उनके पास बहुत काम रहता है। मुझे विश्वास है कि उन्होंने हनुमानजी को किसी आवश्यक काम से भेजा होगा।"

नरेन ने अपने पिता के शब्दों पर विचार किया। "आप सही कह रहे हैं बाबा," थोड़ी देर बाद वह मुस्कराया। "कार्य होने के कारण वे नहीं आ सके, नहीं तो, वे इतने पके-पके केलों को कैसे छोड़ सकते हैं!"

* * *

विश्वास, विश्वास, स्वयं पर विश्वास, ईश्वर में विश्वास, यही महानता का रहस्य है। – स्वामी विवेकानन्द

कविता

श्रीरामकृष्ण-वन्दना

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

जय श्रीरामकृष्ण जगवंदन, भव-भय भंजन, जन-मन रंजन ।
दुरित-दोष-दुख दुर्मति गंजन, कलुष नाश कर कुमति विभंजन ।
जय यतिराज जगत शुभकारी, पूजित पद वसुधा नर-नारी ।
राम-कृष्ण संयुत अवतारी, मोह-तिमिर-दुख-द्वन्द निवारी।
जय भगवन्त भक्त भयहारी, धर्मोद्धासक जग उपकारी ।
परमानन्द परम हितकारी, सर्वोद्धारक सुमति प्रसारी ।
जय जगपालक विभ्रमघालक, ज्ञान-भक्ति-वैराग्य सुचालक ।
जय सारदपति, जय निर्मलमति, परमहंस जय, दायक सद्गति ।

पंकज नाभि रमापति राजे

श्रीधर प्रसाद द्विवेदी, डाल्टनगंज, झारखण्ड

शान्त शरीर भुजंग बिछावन
पंकज नाभि रमापति राजे ।
विश्व विशाल अधार हरे शुचि
वारिद कान्ति पयोधि सु साजे ।।
सिन्धु सुधा पति राजीव लोचन
ध्यान अगम्य मुनीन्द्र समाजे ।
वन्दन हे ! भवभीति दुरायक
लोक सुनायक आप विराजे ।।

गोपाल की माँ अघोरमणि देवी की दिव्य भक्ति

ब्रह्मचारी वेदगम्यचैतन्य, रामकृष्ण मठ, श्रीभूमि, आसाम

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में जहाँ योग, ज्ञान और तप का वर्चस्व रहा है, वहीं कुछ साधकों ने केवल अपने विशुद्ध प्रेम और सरल हृदय से ईश्वर को प्राप्त किया। ऐसी ही एक अद्वितीय भक्तिपथ की साधिका थीं – अघोरमणि देवी, जिन्हें सारा विश्व गोपाल की माँ के नाम से जानता है। उनके जीवन की सबसे विलक्षण बात यह थी कि उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को बालक गोपाल के रूप में अपने पुत्र के समान न केवल पूजा, बल्कि उन्हें सचमुच अपने साथ जीवन्त रूप में अनुभव किया।

अघोरमणि देवी का जन्म एक सामान्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका जीवन साधारण था, किन्तु हृदय अत्यन्त भावुक और ईश्वराभिमुख था। गृहस्थ जीवन में उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक उपेक्षा और संतति का अभाव। लेकिन उन्होंने इन दुखों को अपने आध्यात्मिक जीवन का साधन बना लिया। वे कहती थीं, 'अपने गोपाल को मैंने अपने हृदय से जन्म दिया है।' यह कोई कल्पना नहीं थी, यह साक्षात् अनुभूति थी, जो उनके जीवन का केन्द्र बन गई।

वे गोपाल को एक सजीव बालक के रूप में देखती थीं। सुबह उठते ही उसे जगातीं, स्नान करातीं, भोग लगातीं, सुलातीं, उससे बातें करतीं और रूठ भी जातीं। गोपाल उनका

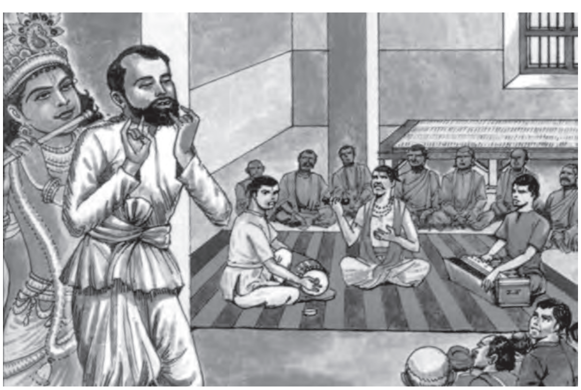

जीवन्त पुत्र था, आराध्य नहीं। वे कहती थीं, 'मैं उसे आँखों से देखती हूँ, वह मुझसे बोलता है, मुझे डाँटता है, मुझसे रूठता है।' उनकी इस अनुभूति को कभी पागलपन नहीं समझा गया, क्योंकि उनके भाव में एक विलक्षण सच्चाई और गहराई थी, जिसे श्रीरामकृष्ण परमहंस ने स्वयं स्वीकार किया।

जब वे पहली बार दक्षिणेश्वर पहुँचीं, तो श्रीरामकृष्ण ने दूर से देखकर कहा – 'लो, गोपाल की माँ आ गई।' वे चकित रह गईं, क्योंकि किसी को उन्होंने यह नहीं बताया था। उन्होंने पूछा, 'क्या गोपाल मेरे साथ आया है?' श्रीरामकृष्ण ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया – 'हाँ, वह तो सदा तुम्हारे साथ रहता है।' तभी से उनका सम्बन्ध ठाकुर से गहरा हो गया, क्योंकि उन्होंने उनके भाव को पूर्ण रूप से प्रमाणित कर दिया।

श्रीरामकृष्ण उन्हें वात्सल्य-भक्ति की अद्वितीय मूर्ति मानते थे। वे कहते थे – 'इस माँ ने अपने प्रेम से गोपाल को बाँध लिया है। यह कोई कल्पना नहीं, यह सच्ची अनुभूति है।' श्रीरामकृष्णलीला-प्रसंग में वर्णन आता है कि एक बार जब गोपाल की माँ ठाकुर के सामने गोपाल को पुकार रही थीं, तो ठाकुर समाधि में चले गए और सारा वातावरण दिव्य हो गया। उपस्थित भक्तों ने भी उस अद्भुत अनुभूति का अनुभव किया।

गोपाल की माँ की भक्ति में कोई विधि-विधान नहीं था – न जप, न मन्त्र, न वेदों का अध्ययन। उनकी साधना थी – एक माँ का विशुद्ध नि:स्वार्थ प्रेम, ममता और गोद में समाया ईश्वर। उनके लिए रसोईघर मन्दिर था, भोग बनाना पूजा थी, और गोपाल को सुलाना ध्यान की चरम अवस्था। वे कहती थीं, 'जब वह मुझसे बोलता है, तो मेरा मन सब

शेष भाग पृष्ठ ८४ पर

युवाओं के लिए महाभारत के विलक्षण प्रसंग

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

इस लेख में महाभारत के उन विलक्षण प्रसंगों को प्रस्तुत किया गया है, जो आधुनिक युवाओं के मानसिक द्वन्द्व, आत्मनिर्भरता, निर्णय-शक्ति, सामाजिक दबाव, करियर-संघर्ष एवं नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से उपयुक्त हैं। ये प्रसंग न केवल शिक्षाप्रद हैं, अपितु वर्तमान जीवन की जटिलताओं में भी युवा वर्ग के लिए दीपस्तम्भ के समान हैं।

१. अर्जुन का आत्म-संघर्ष और निर्णय का विवेक

कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में जब अर्जुन ने अपने स्वजन, गुरुजनों तथा मित्रों को अपने समक्ष खड़ा देखा, तब उनका रथ-स्थिर मन विचलित हो गया। मोह, करुणा और कर्तव्य के द्वन्द्व ने उन्हें निर्णायक बना दिया। किन्तु श्रीकृष्ण के उपदेशों से उन्होंने आत्मस्वरूप का बोध पाया और कर्म के क्षेत्र में पुनः स्थिर हुए। अर्जुन का आत्म-संघर्ष युद्धभूमि में उसकी भावनात्मक असमंजस की चरम अवस्था को प्रकट करता है। जब अपने स्वजन, गुरुजन तथा सखा-बान्धवों को सम्मुख देखकर वह क्षणमात्र के लिए अपने कर्तव्य से विचलित होता है, तब यह उसके भीतर के मनोवैज्ञानिक संघर्ष को उद्घाटित करता है।

प्रासंगिकता और सन्देश : यह प्रसंग उस आधुनिक युवक के आन्तरिक द्वन्द्व का प्रतीक है, जो जीवन के किसी निर्णायक मोड़ पर भावनाओं और कर्तव्य के बीच उलझन में पड़ जाता है। किन्तु जैसे अर्जुन ने आत्मबोध, उद्देश्यबोध और श्रेष्ठ मार्गदर्शन से धर्म का पथ ग्रहण किया, वैसे ही आज के युवाओं को भी अपने निर्णयों को तात्कालिक भावुकता नहीं, अपितु दीर्घदृष्टि और आत्मचिन्तन से संचालित करना चाहिए। आज का युवा जब पारिवारिक अपेक्षाओं, सामाजिक दबावों और आन्तरिक आकांक्षाओं के बीच संघर्ष करता है, तब उसे यह निर्णय लेना कठिन होता है कि वह अपनी रुचियों का अनुसरण करे या परम्परा की अपेक्षाओं का। भावुकता और मोह के क्षणों में भी यदि आत्मचिन्तन और विवेक का आश्रय लिया जाए, तो जीवन का मार्ग स्पष्ट हो सकता है।

२.कर्ण का संघर्ष, आत्मबल और आत्मनिर्भरता

समाज द्वारा बार-बार उपेक्षित, 'सूतपुत्र' कहकर अपमानित कर्ण ने अपनी प्रतिभा, दानशीलता और अद्भुत शौर्य से स्वयं को सिद्ध किया। उन्होंने न तो संसाधनों की कमी को अवरोध बनने दिया, न ही जन्म की मर्यादा को बाधा माना। कर्ण का जीवन असामाजिक उपेक्षा, पहचानहीनता और सीमित संसाधनों के बीच आत्मबल और पुरुषार्थ से परिपूर्ण एक जीवंत उदाहरण है। समाज ने उसे 'सूतपुत्र' कहकर तिरस्कृत किया, किन्तु उसने कभी भी आत्मगौरव को त्याग कर समझौता नहीं किया। उसका साहस, दानशीलता और युद्धकला उसे देवताओं की कोटि में प्रतिष्ठित करते हैं।

प्रासंगिकता और सन्देश : यह प्रसंग उन युवकों के लिए प्रकाशस्तम्भ है, जो सीमित पारिवारिक, आर्थिक अथवा सामाजिक पृष्ठभूमि में जन्म लेकर आत्मदया में डूब जाते हैं। कर्ण की भाँति यदि युवा आत्मनिर्भरता, धैर्य और श्रम की राह पकड़ें, तो सफलता अनिवार्य हो जाती है। सीमित साधनों और सामाजिक असमानताओं से पीड़ित युवक कर्ण से यह प्रेरणा ले सकता है कि आत्मबल से बड़ी कोई सहायता नहीं। यश और प्रतिष्ठा का निर्माण वंश से नहीं, पुरुषार्थ और चरित्र से होता है।

३. द्रौपदी की न्याय-संकल्पित वाणी और स्वाभिमान

जब सभा में अपमानित होने पर सभी मौन रहे, तब द्रौपदी ने सच्चे साहस और धर्मबोध के साथ न्याय की पुकार लगाई। उनका स्वर नारी की के आत्मगौरव का उद्घोष था। द्रौपदी की वह पुकार, जो उसने राजसभा में अपमानित होते हुए की, एक साहसी स्त्री की न्याय की माँग थी। जब समस्त विद्वान, योद्धा और वृद्धजन मौन हो गये, तब द्रौपदी ने अकेले अन्याय के विरुद्ध स्वर उठाया।

प्रासंगिकता और सन्देश : यह प्रसंग आज की युवतियों तथा उन युवाओं के लिए भी अत्यन्त प्रेरणास्पद है, जो सामाजिक अन्याय, लैंगिक भेदभाव अथवा मानसिक उत्पीड़न का शिकार होते हैं। द्रौपदी यह सिखाती हैं कि मौन अन्याय को पुष्ट करता है, जबकि साहसिक विरोध परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करता है आज की युवतियाँ जब असमानता, लैंगिक भेद या सामाजिक अन्याय का सामना करती हैं, तो द्रौपदी की भाँति अपनी आवाज़ उठाना आवश्यक है। आत्मसम्मान के लिए बोलना ही वास्तविक नारीत्व और व्यक्ति की गरिमा है

४. अभिमन्यु की अधूरी जानकारी और परिणाम का बोध

अभिमन्यु चक्रव्यूह में प्रवेश करने की कला तो जानता थे, परन्तु उससे बाहर निकलने का मार्ग नहीं जानता था। इस अपूर्ण ज्ञान के कारण वह वीरगति को प्राप्त हुआ। अभिमन्यु का प्रसंग युवाओं के लिए चेतावनी स्वरूप है, जहाँ अधूरी जानकारी और असावधानी के कारण प्रतिभाशाली योद्धा वीरगति को प्राप्त होता है।

प्रासंगिकता और सन्देश : यह परिस्थिति आधुनिक युवाओं के उस व्यवहार से मेल खाती है, जब वे बिना पर्याप्त ज्ञान, अनुभव या योजना के किसी कैरियर, व्यवसाय अथवा सम्बन्ध में कूद पड़ते हैं। अभिमन्यु की कथा यह सिखाती है कि साहस आवश्यक है, किन्तु उसके साथ उचित मार्गदर्शन, सम्पूर्ण तैयारी और अनुशासन भी अनिवार्य है। आज के अनेक युवा बिना सम्पूर्ण योजना या मार्गदर्शन के करियर, व्यापार या सम्बन्धों में प्रवेश कर जाते हैं और अधूरी तैयारी का दुष्परिणाम भोगते हैं। किसी भी प्रयोजन की सफलता हेतु पूर्ण जानकारी, रणनीति और पूर्व-विचार आवश्यक है। अधूरी जानकारी जोखिमपूर्ण होती है।

५. गान्धारी की मौन स्वीकृति और निष्क्रिय विरोध

गान्धारी ने अनाचार, पक्षपात और युद्ध की सम्भावनाओं को समझते हुए भी विरोध नहीं किया। उनका मौन विरोध अन्ततः विनाश का कारण बना। गान्धारी की चिरस्थायी चुप्पी एक ऐसा संकेत है, जो निष्क्रिय विरोध की सीमाओं को दर्शाता है। उन्होंने अन्याय को देखा, किन्तु सदा मौन रहकर अपने कर्तव्यों से विमुख हो गईं।

प्रासंगिकता और सन्देश : यह प्रसंग आज के उन युवाओं के लिए दर्पण है, जो किसी सामाजिक अन्याय, संस्थागत पक्षपात या भ्रष्टाचार को देखकर केवल आक्रोशित हो जाते हैं, किन्तु कोई ठोस कदम नहीं उठाते। गाँधारी से यह शिक्षा मिलती है कि केवल पीड़ा का अनुभव पर्याप्त नहीं – अन्याय के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध ही परिवर्तन का मूल है। आज के युवा जब केवल सोशल मीडिया पर विरोध प्रकट कर वास्तविक समाज में निष्क्रिय रहते हैं, तब वह गान्धारी के मौन-जैसे हो जाते हैं। सक्रिय हस्तक्षेप और साहसी निर्णय ही परिवर्तन ला सकते हैं; मौन केवल असहमति नहीं, सहभागिता का संकेत बन सकता है।

निष्कर्ष – इन प्रसंगों में आध्यात्मिकता के साथ-साथ व्यावहारिक जीवनबोध है – वह जीवनबोध, जो एक संघर्षरत युवक को निर्णय, धैर्य, आत्मबल और नैतिक सामर्थ्य के पथ पर अग्रसर करता है। महाभारत की यह व्याख्या केवल स्मृति या भक्ति का विषय नहीं, बल्कि आज के जटिल यथार्थ का मार्गदर्शक है। ये केवल इतिहास या आध्यात्मिक गाथाएँ नहीं, अपितु आधुनिक युग के जिज्ञासु, कर्मशील एवं आत्मबोधी युवाओं के लिए एक जीवंत मार्गदर्शिका हैं। जब युवा अर्जुन की तरह आत्मसन्देह से संघर्ष करते हैं, कर्ण की तरह सामाजिक उपेक्षा से जूझते हैं या द्रौपदी की भाँति अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हैं, तब उन्हें महाभारत के इन प्रसंगों में आत्मदर्शन प्राप्त होता है। यदि आज का युवा इन शिक्षाओं को आत्मसात् करे, तो वह न केवल सफल, अपितु सुसंस्कृत, आत्मनिर्भर और आदर्श समाज का निर्माता बन सकता है। इन कहानियों को पढ़कर हम न केवल अपने जीवन के संघर्षों को बेहतर समझ सकते हैं, बल्कि उन्हें आत्मबल और नैतिक आचरण से पार भी कर सकते हैं। महाभारत की शिक्षाएँ युग-युगान्तर तक मानवता के लिए प्रकाशपुंज बनी रहेंगी। ○○○

महाशिवरात्रि विशेष

सर्वं शिवमयं जगत्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रोफेसर, शा.दू.ब. महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर

यों तो एक मात्र ब्रह्म को छोड़कर अन्य कुछ है ही नहीं, किन्तु सगुण रूप में भगवान विष्णु और भगवान शिव की अपार महिमा का वर्णन पुराणों में दिखाई पड़ता है। वस्तुत: अभेद रहते हुए भी दोनों के विलक्षण चरित्र और लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। एक ओर नारायण बैकुण्ठ के स्वामी हैं, तो दूसरी ओर भगवान शिव अपने शिवलोक के साथ-साथ पृथ्वी पर कैलासवासी के रूप में जाने जाते हैं। भगवान शिव एक ऐसे देवता हैं, जो सकल और निष्कल, दोनों ही रूपों में पूजित होते हैं। उनकी मूर्ति सकल रूप है और लिंग निष्कल रूप का प्रतीक है। निराकार रहते हुए एक ओर वे सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हैं, तो दूसरी ओर शिवलिंग के रूप में पृथ्वी के कोने-कोने में प्रतिष्ठित हैं, जिनमें द्वादश ज्योर्लिंगों की विशेष प्रसिद्धि है।

सृष्टि के लिए भगवान शिव ने अर्धनारीश्वर का रूप धारण किया और अपने आधे शरीर से माता उमा को प्रकट किया। फिर अलग-अलग कल्पों में वे सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान – पाँच रूपों में प्रकट हुए। एक साथ संयुक्त रूप होने के कारण पाँच मुखवाले ये भगवान शिव पंचानन कहे जाते हैं।

भगवान शिव के पृथक्त: दस अवतार हुए – महाकाल, तार, भुवनेश, षोडश, श्रीविद्या, भैरव, छिन्नमस्तक, धूमवान, बगलामुख, मातंग और कमल। इसी प्रकार देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए महर्षि कश्यप और सुरभि के पुत्रों के रूप में इनके एकादश अवतार हुए – कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव।

त्रेता युग में भगवान विष्णु जब श्रीरामचन्द्र के रूप में अवतरित हुए, तब उनकी सेवा करने के उद्देश्य से भगवान शिव वानर का रूप धारण कर हनुमान बन कर धराधाम पर अवतीर्ण हुए। श्रीराम की अनन्य सेवा-भक्ति के परम अनुरागी हनुमत-रूप उन्हें इतना प्रिय लगा कि राम-भक्ति के नित्य प्रचार के लिए उन्होंने सदा धरा-धाम पर ही रहने का निश्चय कर लिया। इसीलिए द्वापर में भीम को दर्शन दिये और आज भी सुपात्र भक्तों को दर्शन आदि से कृतार्थ करते रहते हैं।

यद्यपि भगवान शिव के असंख्य अवतारों और नाम-रूपों के वर्णन मिलते हैं, परन्तु उनकी विश्वव्यापिनी अष्टमूर्ति सबसे विलक्षण है। उनकी प्रसिद्ध अष्ट-मूर्तियाँ हैं – शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। इन अष्ट-मूर्तियों द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और जीव अधिष्ठित हैं।

भगवान शिव अपने जिस विश्वम्भरा (पृथ्वी) रूप से सम्पूर्ण चराचर जगत को धारण करते हैं, उसका नाम शर्व है। सारे संसार को जीवन प्रदान करनेवाला जल जो परमेश शिव का रूप है, वह भव कहा गया है। अखिल विश्व को व्याप्त करके सबके बाहर तथा भीतर विद्यमान शुभ और तेजोमय जो अग्नि भगवान शिव का घोर रूप है, वह रूद्र नाम से जाना जाता है। जो सबको स्पन्दित करता हुआ स्वयं भी स्पन्दित होता रहता है, वह विश्व का भरण-पोषण करनेवाला शिव का उग्र रूप वायु नामधारी है। सबको अवकाश देनेवाला, सर्वव्यापक और सभी भूतों का भेदन करनेवाला भगवान शिव का जो आकाशात्मक भयानक रूप है, उसका नाम भीम है। जो समस्त आत्माओं का अधिष्ठान, सभी क्षेत्रों (जीवों) का निवासस्थान और सभी पशुओं के बन्धन को काटनेवाला शिव का क्षेत्रज्ञ रूप है, उसका नाम पशुपति है। सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करनेवाला सूर्य भगवान शिव का ईशान नामक रूप है। अमृत समान किरणोंवाला जो चन्द्रमा सम्पूर्ण विश्व को आप्यायित करता है, भगवान शिव के उस रूप को महादेव की संज्ञा दी गई है।

आत्मा रूपी भगवान शिव का जो रूप है, वह अन्य समस्त रूपों को व्याप्त करनेवाला है। इसलिए सम्पूर्ण विश्व शिवात्मक है – **विश्वं तस्माच्छिवात्मकम्**।[१]

इस प्रकार पंच महाभूत, सूर्य, चन्द्रमा और जीवात्मा, ये आठों भगवान शिव के ही रूप हैं। जगत् का कण-कण शिव का ही रूप है। संसार में शिव से भिन्न कुछ भी नहीं है। महाकवि कालिदास ने अपने विश्वप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम श्लोक में भगवान की अष्टमूर्तियों की ही वन्दना की है –

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति
विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा
या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति
यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु
वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[२]

जो विधाता की प्रथम रचना है (जल), जो विधिपूर्वक सम्पन्न की गयी हवन-सामग्री को वहन कर देवताओं तक पहुँचाता है (अग्नि), जो होता यजमान है (जीवात्मा), जो दो दिन और रात रूपी काल का विधान करते हैं (सूर्य और चन्द्रमा), जो श्रुति के विषय – शब्द रूपी गुणवाला सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित है (आकाश), जिसको समस्त प्रकार के बीजों का मूल कहा जाता है (पृथ्वी), जिससे सभी प्राणधारी प्राणवान बने रहते हैं (वायु), ऐसे प्रत्यक्ष आठ शरीरों से युक्त भगवान शिव तुम सब (नाटक-दर्शकों) की रक्षा करें।

अद्वैत वेदान्त का मत है कि यह दृश्यमान सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है – ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन''। अद्वैत वेदान्त का वह ब्रह्म निर्गुण और निराकार माना गया है। किन्तु अष्टमूर्ति भगवान शिव सकल-निष्कल, साकार-निराकार, सूक्ष्म-स्थूल और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, सभी रूपों में विद्यमान हैं। जो कुछ दृश्यमान है, वह भी शिव है और जो अदृष्ट है, वह भी शिव है। दृश्य जगत्, दर्शनीय परमात्मा और द्रष्टा जीव, सभी शिव ही हैं। सम्पूर्ण विश्व शिव का ही रूप है, सम्पूर्ण विश्व में शिव का ही वास है और विश्व से परे भी भगवान शिव ही हैं।

सम्पूर्ण जीव-जगत में शिव देखनेवाले परमहंस श्रीरामकृष्ण देव ने शिवभाव से जीवसेवा का महान मन्त्र अपने शिष्यों को दिया और स्वामी विवेकानन्द ने इस मन्त्र को चरितार्थ करने में अपना जीवन-सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आज भी रामकृष्ण मठ जीव में शिव के दर्शन करता निरन्तर साधना-पथ पर अग्रसर है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. शिवपुराण, वायवीय संहिता, उत्तरखण्ड, अध्याय ३, श्लोक २८ **२.** अभिज्ञानशाकुन्तलम्, श्लोक १

पृष्ठ ६० का शेष भाग

प्रासंगिक हैं। ज्ञानमार्ग का साधक उसी परम तत्त्व के स्वरूप को जानना चाहता है और श्रीचैतन्यदेव भक्तिमार्ग के साधक उन्हें प्रेम करते हैं। क्योंकि प्रेम ही यहाँ परम पुरुषार्थ है। केवल शंकराचार्यजी के ज्ञानमार्ग के साथ ही नहीं, अन्यान्य भक्तिमार्ग के आचार्यों के मतों के साथ भी श्रीचैतन्यदेव के मत में भिन्नता देखी जाती है। अर्थात् श्रीचैतन्यदेव के विचारों में स्वतन्त्रता है। इसलिये श्रीकृष्णदास कविराज और श्रीजीव गोस्वामी जैसे गौड़ीय आचार्य गण चैतन्यदेव के सम्प्रदाय को '**स्व सम्प्रदाय सहस्राधिदेवं**' कहते हैं। यदि चिन्तन किया जाये, तो शंकराचार्यजी शिवावतार हैं और महाप्रभु चैतन्यदेव राधा-कृष्ण की युगल अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार दोनों का ही भ्रम-प्रमादरहित हैं, दोनों प्रवर्तित मार्ग भिन्न होने पर भी, दोनों का लक्ष्य एक है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीरामकृष्णकथामृत भाग ३, ९वम खं, परिच्छेद ४ **२.** युगस्रष्टा श्री चैतन्य – यज्ञेश्वर चौधुरी, पृ. १०७ **३.** 'अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव फेथ एण्ड मुवमेन्ट इन बंगाल' – सुशील कुमार दे, पृ. १५ और युगस्रष्टा श्री चैतन्य, पृ. १०६ **४.** श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य-प्रथम, १/११६ **५.** श्रीचैतन्यभागवत, मध्य-खण्ड, २८वाँ अध्याय,१८/८-९ **६.** वही, १८/१०-११ **७.** वही, अन्त्य खंड, ३ अध्याय ३/२३ **८.** वही, ३/३२-३५ **९.** श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य-सप्तम्, ७/९७-१०० **१०.** वही,७/११७-१२० **११.** वही,७/१३ **१२.** वही, मध्य-नवम ९/२४९ **१३.** वही, मध्य-षष्ठ ६/१२१ **१४.** आचार्य शंकर - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ.१५३ **१५.** वेदान्तसार - अनुवाद-स्वामी अमृतत्वानन्द,पृ.११८ **१६.** वही, पृ. ११८ **१७.** श्रीश्रीचैतन्यदेव - स्वामी सारदेशानन्द, पृ.९० **१८.** वही, पृ.९० **१९.** वही, पृ. ९४ **२०.** आचार्य शंकर और चैतन्यदेवेर मतेर तुलना - राजेन्द्र नाथ घोष, उद्बोधन-शताब्दी जयन्ती संकलन, पृ. १४६ **२१.** श्रीरामकृष्णकथामृत, १/६४ **२२.** श्रीश्रीचैतन्यदेव, पृ.११ **२३.** वही, पृ.११ **२४.** श्रीचैतन्यचरितामृत, ६/२४० **२५.** श्रीश्रीचैतन्यदेव, पृ.११ **२६.** श्रीश्रीचैतन्यदेव, पृ.१३ **२७.** युगस्रष्टा श्रीचैतन्य, पृ. ११०

रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद : लक्ष्य और कार्यप्रणाली

स्वामी सत्यरूपानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे। उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण व्याख्यान २२ फरवरी, १९९७ को भावप्रचार परिषद की सभा में दिया था।)

मध्यप्रदेश रामकृष्ण विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद की यह बैठक है। यद्यपि यहाँ अपेक्षानुरूप सदस्य नहीं आ सके। मौलिक प्रश्न यह है कि हम लोग रामकृष्ण, विवेकानन्द और माँ सारदा के नाम से संस्थाएँ क्यों चलाते हैं? अपने देश में, अपने प्रदेश में भी बहुत-सी सामाजिक संस्थाएँ विभिन्न नामों से हैं। वे बड़ा काम भी करती हैं। हम हिन्दू लोगों के अतिरिक्त क्रिश्चियन लोग बड़ी-बड़ी संस्थाएँ चला रहे हैं। राजनैतिक लोगों ने भी संस्थाएँ बना रखी हैं। वे लोग भी बड़ी-बड़ी संस्थाएँ चलाते हैं। उन संस्थाओं के माध्यम से वे लोग समाज की सेवा भी कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि वे व्यर्थ हैं। इन सबके बीच में ये 'रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद्' या रामकृष्ण मिशन या रामकृष्ण, विवेकानन्द, माँ सारदा के नाम पर विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ या प्राइवेट आश्रम बनाकर आजकल क्यों चलाये जा रहे हैं? या क्यों चलाया जाना चाहिए? अभी जहाँ नहीं चलाये जा रहे हैं, हम लोग प्रयत्न करते हैं कि वहाँ और ऐसे लोग हों, जो आश्रम प्रारम्भ करें, तो उसका कारण क्या है, इसी बात पर आप लोगों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द जी जब विदेशों में गए और चार वर्ष वहाँ रहे, तो उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता और गम्भीरता से पाश्चात्य संस्कृति का अध्ययन किया। पाश्चात्य जगत की सफलता का कारण उन्होंने ढूँढ़ा। वे भारत में लौटकर आये। वे भारतवर्ष से पहले ही परिचित थे। उन्हें हमारी असफलता का कारण स्पष्ट लगा। उस युग में हमसे जिन देशों की जनसंख्या बहुत कम थी, अभी भी है, पर उस अल्प जनसंख्यावाले देशों ने भी इतनी महान उन्नति की। मुट्ठीभर अंग्रेजों ने हमको दो सौ साल तक गुलाम बनाकर रखा। उसके पहले पुर्तगाल जैसा छोटा-सा देश, जिसको हम चटनी बना दें। पुर्तगालियों ने लगभग सौ सालों तक भले ही राज्य नहीं किया, लेकिन व्यापार हमारे देश में करते रहे। डच आए, फ्रेंच आए और उन लोगों ने हम पर शासन किया। अंग्रेजों ने शासन किया। स्वामीजी ने गहराई से इन चीजों को समझा। वे सोचने लगे, ३० करोड़ की आबादी वाले पूरे देश को मुट्ठीभर अंग्रेज चला रहे हैं। स्वामीजी के समय यहाँ शासक वर्ग में कोई ४००-५०० अंग्रेज शासक रहे होंगे। इसका क्या कारण है?

स्वामीजी ने स्वयं बताया। दो बातें उन्हें स्पष्ट थीं। एक कारण उन्होंने कहा, पाश्चात्य जगत की सारी उन्नति का कारण है शिक्षा। उस देश में शिक्षित लोग हैं और जैसी शिक्षा उनके राष्ट्र के लिए आवश्यक है, वैसी शिक्षा की व्यवस्था अंग्रेजों ने की है। दूसरा कारण स्वामीजी ने देखा संगठन। हम एकदम विघटित हो गये थे। एक समय था, जब हम संगठित थे। किन्तु उस समय हजार साल की गुलामी में हम विघटित हो गये थे। ये दो कारण स्वामीजी ने स्पष्ट देखा – हमारे देश में शिक्षा का अभाव है और संगठन का अभाव। इसलिए हम ३० करोड़ लोगों को, बाहर के व्यक्ति अंग्रेज या और भी विदेशी जो बाहर से आये, उन लोगों ने हम पर राज्य किया है, हमको गुलाम बनाकर रखा है। इससे मुक्त होने का उपाय क्या है? कैसे, क्या किया जाय?

स्वामीजी ने दो चीजें करने को कहा। एक उन्होंने कहा – शिक्षा का प्रचार और दूसरा कहा – तुम लोग संगठित हो जाओ। स्वामीजी के समय शिक्षा तो थी ही। स्वामीजी जब पैदा हुए और जब वह ग्रेजुएट हो रहे थे, तब तक इस देश में आधुनिक शिक्षा को शुरू हुए चालीस वर्ष से अधिक हो गये थे। सन् १८३६ में लार्ड मैकाले ने लार्ड वेटिंग्स से घोषणा करवायी कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा। उसके पहले हमारे यहाँ शिक्षा थी और अंग्रेजों के आने के पहले भी हमारे यहाँ शिक्षा थी। पर अंग्रेजों के

आने के पहले इस देश की राजभाषा फारसी थी। मुगलों के राज्य में फारसी भाषा थी। लोग फारसी पढ़ते थे। गाँव-गाँव में मौलवी होते थे, जो फारसी और अरबी पढ़ाया करते थे। हमारे हिन्दू पण्डित होते थे, जो संस्कृत पढ़ाते थे, लेकिन यह भी सर्वांगिण शिक्षा नहीं थी।

अंग्रेजों के समय जो शिक्षा हमारे देश में थी, उसमें फारसी, अरबी और संस्कृत तीन भाषाओं को लोग पढ़ते थे। इसमें भी उसका साहित्य पढ़ते थे। फारसी भाषा, संस्कृत भाषा और अरबी भाषा के माध्यम से कोई विज्ञान नहीं पढ़ा जाता था, इतिहास तक नहीं पढ़ा जाता था, भूगोल की चर्चा नहीं थी। धार्मिक साहित्य थोड़ा-बहुत पढ़ते थे। संस्कृत में थोड़ा दर्शन पढ़ते थे, पर कम लोग थे, अधिकांश लोग नहीं थे। लार्ड मैकाले ने यह विचार किया कि इन लोगों को ऐसी शिक्षा दी जाये कि हमारे देश में काले अंग्रेज पैदा हो जायें, शिक्षा से वे बिल्कुल यूरोपीय हो जायें, उनका खान-पान, रहन-सहन सब यूरोपीय हो जाये और केवल चमड़ी से काले रहें। यद्यपि स्वामीजी उसी शिक्षा में शिक्षित हुए, पर उन्होंने उनके दोषों को पढ़ते समय ही भलीभाँति समझ लिया था। इसलिए उन्होंने दूसरे माध्यम से भी शिक्षा ली। उसके बाद स्वामीजी ने हमारे देश में 'मनुष्य निर्माणकारी शिक्षा' की बात कही, 'चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा' की बात कही।

यह शिक्षा अंग्रेजों की शिक्षा से सम्भव नहीं थी। इसलिए स्वामी विवेकानन्द की महासमाधि के बाद रामकृष्ण मिशन के जो सुधीगण थे, जो नेता थे, बड़े-बड़े कार्यकर्ता थे, जो रामकृष्ण मिशन के आधार स्तम्भ थे, स्वामीजी के गुरुभाई और उनके शिष्यगण थे, उन लोगों ने यह निश्चय किया कि स्वामीजी का यह आह्वान है कि शिक्षा से देश का सुधार होगा, इसलिए इस देश में रामकृष्ण मिशन को सरकार से अलग शिक्षा संस्थाओं को चलाना चाहिए। उसमें शिक्षा कैसी होगी? स्वामीजी ने कहा – गुरुकुल पद्धति से होगी। उस आधार पर बहुत पहले बिहार के देवघर में आश्रम आरम्भ किया गया। वहाँ प्रसिद्ध आवासीय विद्यालय है। देवघर में शिक्षा-दीक्षा चलने लगी। फिर बंगाल के रहड़ा में हुआ। उसके पहले नरेन्द्रपुर में हुआ, फिर पुरुलिया में हुआ। दक्षिण में मैसूर में भी लगभग ५० साल हो गये। इस प्रकार स्वामीजी ने शिक्षा का भार हमलोगों को दिया और उसका संचालन स्वामीजी के विचारों के अनुसार उपरोक्त स्थानों पर होने लगा।

दूसरी बात स्वामीजी ने कही कि संगठित होओ। कैसे संगठित हों? स्वामीजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि तुम्हें धर्म को केन्द्रित करके संगठित होना है। धर्म हमारे संगठन का, हमारे कार्य का आधार होगा। तो कौन-सा धर्म? हमारे देश में बहुत से धर्म हैं। संसार के सभी प्रसिद्ध धर्म हमारे देश में हैं। स्वामीजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वेदान्त पर आधारित जो सनातन धर्म, है, उस धर्म को केन्द्र में करके तुम लोग एकत्रित होओ। जिस धर्म में उदारता है, जिस धर्म में संसार के सभी धर्मों के लोगों को गले लगाने की बात है, जिस धर्म में मनुष्य की गरिमा है, जिस धर्म में मनुष्य स्वयं भाग्य निर्माता, ऐसा जो महिमावान सनातन धर्म है, इस सनातन धर्म के आधार पर संगठित होना है। उसके बाद क्या करो? स्वामीजी ने आपके-हमारे सामने 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' का आदर्श रखा। अर्थात् अपनी मुक्ति और जगत के कल्याण के लिये कार्य करो। भूमिका इसलिये है कि यह समझ लें आप और हम क्यों इन संस्थाओं से जुड़े हैं?

स्वामीजी ने इस देश की समस्या का समाधान क्या बताया? उन्होंने इस देश की समस्या का समाधान बताया कि तुम लोग धर्म को केन्द्रित करके संगठित होओ। आश्रम का नाम जो तुम्हें देना है दो, किन्तु तुम्हारे जीवन का केन्द्र धर्म हो। तुम धर्म-केन्द्रित संगठित हो और पूर्णत: नि:स्वार्थ और समर्पित होकर सेवा करो। इससे देश की सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा। स्वामीजी ने कहा, त्याग और सेवा; ये भारतीय आदर्श हैं। यदि त्याग और सेवा; इन दोनों क्षेत्रों में तुम अपनी शक्ति लगाओ, बलिष्ठ हो जाओ, पुष्ट हो जाओ, तो अन्य समस्याएँ अपने आप सुधर जायेंगी।

किन्तु स्वामीजी की इस बात को हम लोगों ने नहीं सुना। हमारे देश का अधिक नहीं, केवल १०० का इतिहास आप देखें। १९०० या १८९५ से लेकर अभी तक का आप देखें। इन १०० वर्षों के कालखण्ड को दो भागों में बाँट लें, स्वाधीनता प्राप्ति के पहले के ५० वर्ष और स्वाधीनता-प्राप्ति से अब तक का ५० वर्ष। जैसे दिन और रात का अन्तर दिखता है, वैसा अन्तर आपको दिखेगा। स्वाधीनता-प्राप्ति के पहले ५० वर्षों में सभी देशवासियों ने, नेताओं ने, स्वामीजी के इस आह्वान को सुना और स्वीकार किया कि यह भारतवर्ष हमारी माता है। उसी रूप में उसको लिया, जिस रूप में आप ले रहे हैं। इन सबके जीवन में त्याग

और सेवा थी। जितने महान देशभक्त हुए और जिनको हम नहीं जानते, ऐसे हजारों युवक-युवतियाँ जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए अपने जीवन की बलि दे दी। कैसे? बस, स्वामीजी की बात, गीता की बात, उपनिषद् की बात मानकर। तब उनके मन में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई; ऐसा कोई भेद नहीं था। क्योंकि उन्होंने सनातन धर्म को स्वीकार किया। उन्होंने स्वामीजी की ये दो बातें सुनीं कि नि:स्वार्थ होकर समर्पणपूर्वक इस देश की सेवा करो और अगर आवश्यकता हो, तो बलिदान भी हो जाओ। कितने लोग इसमें बलिदान हो गये। उनके प्रयत्नों से ५० वर्ष के भीतर हमको स्वाधीनता मिल गयी। स्वामीजी ने १८९७-९८ में यह बात कही थी – **भारत माँ अब निद्रा से उठ गयी है। अब उसको कोई दबा नहीं सकता। वह जाग गयी है। स्वामीजी ने यह भी कहा कि अवश्य हमको स्वाधीनता मिलेगी। अकल्पनीय ढंग से हमको स्वाधीनता मिलेगी। स्वामीजी की यह भविष्यवाणी ५० वर्ष के भीतर सत्य हो गयी।** १९४७ में हम स्वाधीन हो गये।

स्वाधीन होने के बाद इक्के-दुक्के, दो-चार लोगों को देश के जो निर्माता थे, उन्हें छोड़ दें, तो अन्य लोगों ने स्वामीजी की बात बिल्कुल नहीं सुनी, रामकृष्ण परमहंस की बात नहीं सुनी। श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की परम्परा कहाँ से प्रारम्भ होती है? हमारे इतिहास में अवतार परम्परा मानते हैं। जैसे भगवान राम से रामकृष्ण तक। वही एक शक्ति थी, जो एक रूप में आयी थी। स्वाधीनता के पश्चात् हमने श्रीराम से श्रीरामकृष्ण तक की अवतार-परम्परा का परित्याग कर दिया। उनके उपदेशों को त्याग दिया। हनुमान से लेकर विवेकानन्द तक के जो उनके सन्देशवाहक थे, उनकी उपेक्षा कर दी।

सन् १९४७ के बाद से दुर्भाग्य से इस देश को धर्म-निरपेक्ष घोषित किया गया और धर्म-निरपेक्ष के नाम पर धर्म की हिंसा हुई और अधर्म प्रतिष्ठित हुआ। अभी उसका परिणाम आप देख रहे हैं। अखबार देखिये। जो इस देश के कर्णधार हैं, देश के संचालक हैं, उन्होंने देश को बेच दिया। इतने घपले, इतने काण्ड, सभी प्रकार के अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार क्यों हो रहे हैं? उसके मूल में वही बात है, भगवान श्रीराम से श्रीरामकृष्ण तक और हनुमानजी से विवेकानन्दजी तक जो उपदेश हमको मिला था, हमारे रक्त में जो बात थी, उसे हमने नहीं सुना। हमने धर्म की उपेक्षा की, धर्म को छोड़ दिया। इसलिए ऐसा हुआ।

इसका प्रमाण आप अपने आप से पूछिये। जो लोग आज भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, कानून से उनके क्या परिणाम होते हैं, उस ओर ध्यान मत दीजिये। पर जो भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, इसमें एक भी ऐसा व्यक्ति है, जिसके जीवन में धर्म है? ऐसा कोई नहीं है, जिसके जीवन में धर्म है। निर्विवाद रूप से सब लोग धर्म को तिलांजलि दे देते हैं। धर्म का बाना पहनते होंगे। मन्दिरों में, गिरिजाघरों में, गुरुद्वारों में, आश्रमों में जाते हैं। साधु-संन्यासियों को बहुत लम्बे-लम्बे प्रणाम करते हैं। पर धर्म का आचरण उनके जीवन में नहीं है। संसार में एकदम डूबे हैं। जो व्यक्ति धर्म में प्रतिष्ठित है, वह क्या कभी अनाचार और भ्रष्टाचार कर सकता है?

जिन लोगों ने स्वतन्त्रता के लिए बलिदान किया। उनके जीवन को देखिये। लोकमान्य तिलक के जीवन को देखिये, महात्मा गाँधी और मदनमोहन मालवीय के जीवन को देखिये। ये सब लोग राजनीति में थे, पर ये लोग स्वामी विवेकानन्द के आदर्श को लेकर चले थे कि जीवन का प्रयोजन धर्म है और धर्म के द्वारा ही इस देश का और हमारा; दोनों का कल्याण होगा। उनके जीवन में किसी प्रकार के भ्रष्टाचार का तो प्रश्न ही नहीं था। इन लोगों को मृत्यु का भी भय नहीं था।

विवेकानन्दजी की यह बात अक्षरश: सत्य हुई। स्वामीजी ने कहा कि अगर तुमने धर्म को छोड़कर कोई नयी धारा अपने देश में लाने का प्रयास किया, तो तुम्हारा सर्वनाश होगा। उन्होंने कहा कि गंगा को तुम फिर गंगासागर से वापस गंगोत्री ले जाओ और दूसरी दिशा में बहा दो। पूर्व की गंगा को चाहे पश्चिम में बहा दो। यह सम्भव है। पर यह कभी सम्भव नहीं है कि तुम भारत के लोग धर्म को छोड़कर आगे बढ़ सको। धर्म को छोड़ोगे, तो तुम्हारा सर्वनाश होगा।

आप सोचकर देखिये। एक-एक व्यक्ति ने करोड़ों-अरबों की सम्पत्ति बना ली है। कभी उसके हृदय में यह बात नहीं आयी कि इस देश की ९० करोड़ या १०० करोड़ जनसंख्या है। यहाँ ऐसे लोग रहते हैं, जो भूखे और नंगे हैं, जिनको कष्ट है, दुख है। स्वप्न में उनको नहीं लगा। केवल मैं और मेरा परिवार। इसीलिए ये करोड़ों की सम्पत्ति इन लोगों ने जमा की है या इस देश को गिरवी रख दिया है। ऐसा क्यों हुआ? क्यों इतना भ्रष्टाचार है? क्योंकि उनके जीवन में धर्म नहीं है।

जब तक धर्म पर आधारित जीवन-व्यवस्था नहीं होगी,

आप इस समस्या का समाधान कभी नहीं कर सकेंगे। धर्म के द्वारा ही मनुष्य भीतर से नियंत्रित होता है और जो व्यक्ति भीतर से नियंत्रित होता है, वही मनुष्यता में प्रतिष्ठित होता है। बाहर का नियंत्रण अधिक दिनों तक मुझे सच्चरित्र नहीं रख सकता। जब नियंत्रण ही नहीं है, तो यदि मैं किसी प्रकार बच सकूँ, तो क्यों करोड़ों जमा न करूँ? क्यों दुष्टता न करूँ? क्यों दूसरे का गला काटकर उसकी सम्पत्ति न ले लूँ? अगर पुलिस से बच सकूँ, तो अपने पड़ोसी की हत्या करके उसकी सम्पत्ति, उसका परिवार क्यों न लूट लूँ? क्यों न रावण की तरह हो जाऊँ? डर तो केवल पुलिस का है। जिसके जीवन में धर्म नहीं है, यदि मुझे पुलिस का डर न रहे, राज्य शासन का भय न हो, तो वह कुछ भी करेगा। ऐसे लोग जिन्हें राज्य शासन का भय नहीं है, वे सब कुछ अनर्थ कर रहे हैं।

स्वामीजी ने हमको-आपको दायित्व दिया। वह क्या था? स्वामीजी ने कहा – देखो, मेरे गुरुदेव ने जो बताया था, मैंने उस धर्म का आचरण किया। एक गुलाम देश में रहकर मैं इतना बड़ा हुआ। जो हमारे शासक थे, वे लोग मेरे शिष्य होकर आ रहे हैं। क्यों आ रहे हैं? क्योंकि जीवन में वह धर्म प्रतिष्ठित है। तो जितनी संस्थाएँ आज श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और माँ सारदा के नाम से चल रही हैं, उन संस्थाओं के मूल में यदि इस सनातन धर्म के उस उच्च आदर्श की प्रेरणा नहीं है, तो वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं होगी। इस संस्था का उद्देश्य त्याग और सेवा है। इसका कोई विकल्प नहीं है। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' का आदर्श हमारे सम्मुख होना चाहिये। जितनी भी संस्थाएँ आप लोग चला रहे हैं या भविष्य में चलाने वाले हैं, उन सारी संस्थाओं की कार्यप्रणाली में त्याग और सेवा ओत-प्रोत है क्या? त्याग और सेवा तभी ओत-प्रोत होगी, जब 'आत्मनो मोक्षार्थं' का आदर्श हमारे सामने रहेगा। जब तक ये आदर्श हमारे सामने नहीं है, हम रामकृष्ण के नाम से क्यों संस्थाएँ चलाते हैं? क्यों हम लोग रामकृष्ण मिशन में आये हैं? इस पर हमें विचार करना होगा। स्वामीजी की इस वाणी को सुनिये – 'मनुष्य का जीवन भोग के लिए नहीं है। मनुष्य पशुओं की तरह नहीं रह सकता है।' उसको रहना भी नहीं चाहिए। ८४ लाख योनियाँ हैं। ८४ लाख योनियों की तरह मनुष्य योनि में भी अगर वही ढर्रा चला, जो पशुओं की तरह है, तो क्या अन्तर हुआ? इसलिए हम देखें कि क्या स्वामीजी या उनके गुरु की यह वाणी 'ईश्वर-प्राप्ति मनुष्य का उद्देश्य है' यह आदर्श हमारे सामने है क्या?

मैं नम्रता से आप लोगों के सामने निवेदन करूँगा कि हमारे प्रत्येक प्राइवेट आश्रम में विशेषकर आप लोग जो कार्यकर्ता हैं, व्यवस्थापक हैं, हमको अपने आपसे प्रश्न पूछना है। दूसरों से मत पूछिये। हम लोग भी अपने आपसे पूछें, आप लोग भी अपने आपसे पूछिये कि स्वामीजी की यह बात – 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' मेरी आँखों के सामने रहती है क्या? अपनी मुक्ति और संसार के कल्याण की भावना के आदर्श लेकर मैं इस संस्था से जुड़ा हूँ क्या? यदि इस प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक मिलेगा, तो दूसरी व्यवस्थाएँ अपने आप हो जायेंगी। दूसरी व्यवस्था त्याग और सेवा की है। सेवा के अनन्त आयाम हैं। एक जगह मेडिकल सेवा की जरूरत है, वह आप कर रहे हैं। दूसरी जगह अच्छी शिक्षा की जरूरत है, आप स्कूल चला रहे हैं। कहीं गरीबों के लिए चला रहे हैं। विभिन्न प्रकार के आयाम हो सकते हैं। पर जब तक हमारी संस्था का यह आदर्श हमारी आँखों के सामने उज्ज्वल नहीं है, हम सफल नहीं होंगे। चाहे जिस नाम से संस्था चला रहे हों, ठाकुर, माँ, स्वामीजी का नाम अगर उससे जुड़ा है, तो उस संस्था का प्राण 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' है। जहाँ इस आदर्श की ओर ध्यान नहीं होता है या यह आदर्श-दृष्टि ओझल हो जाती है, तो फिर वहाँ कलह, बहुत प्रकार के संघर्ष – जैसे पद के लिए संघर्ष कि मैं सेक्रेटरी बनूँ, मैं प्रेसीडेण्ट बनूँ, मैं ट्रेजरर बनूँ, फिर मेरा नाम आना चाहिए, मेरा नाम पहले आना चाहिए इत्यादि समस्याएँ आने लगती हैं। ऐसी विभिन्न प्रकार की समस्याएँ जो दिखती हैं, उसके मूल में हमारी आँखों के सामने से उस आदर्श का ओझल होना है।

स्वामीजी ऋषि थे। भगवान रामकृष्ण अवतार थे। पर स्वामीजी और ठाकुर के पहले राजाराम मोहन राय बहुत बड़े योगी महापुरुष थे। उन्होंने एक संस्था बनायी 'हिन्दू कॉलेज'। अब वह कलकत्ता का प्रेसीडेंसी कॉलेज है। उसकी संस्थापना की बात चली। कलकत्ता के बहुत प्रभावी लोगों को उन्होंने एकत्र किया। कुछ अंग्रेज लोग भी थे और सबने कहा कि भारतीयों को शिक्षा देने के लिए सरकार जो कर रही है करे,

किन्तु हमको एक संस्था बनानी चाहिए। तत्कालीन कलकत्ता के बड़े-बड़े प्रसिद्ध लोग उस सभा में आये। राजाराम मोहन राय मुक्त विचारों के थे। मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करते थे। अरबी, फारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत पर भी उतना ही अधिकार था। कुछ लोग उसके विरोध में थे। राजाराम मोहन राय के प्रयत्न से वह सभा बनी। वह संस्था बनी। सब लोग आये। जब कुछ लोगों को पता लगा कि इसमें राजाराम मोहन राय हैं, तो उन लोगों ने उस सभा में विरोध किया कि नहीं, फिर हम नहीं करेंगे। राजाराम मोहन राय खड़े हुए और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा कि मेरी इच्छा संस्था चलाने की नहीं है, न मैं अपना नाम चाहता हूँ। मैंने यह योजना आपके सामने रखी हैं। आप सब उससे एकमत सहमत थे कि योजना बिल्कुल ठीक है। इसी से देश का कल्याण होगा। राजाराम मोहन राय ने कहा कि मैं अभी इससे त्यागपत्र दे देता हूँ। वे उस संस्था से अलग हो गये, जिसके लिए उन्होंने हृदय का रक्त दिया था। वह संस्था बनी और देश का बहुत कल्याण हुआ। उस प्रेसीडेण्सी कॉलेज से रामकृष्ण मिशन के कितने प्रेसीडेण्ट्स और बड़े-बड़े लोग, सारे देश के बड़े-बड़े लोग शिक्षा प्राप्त किये। डॉ. राजेन्द्र बाबू वहीं पढ़े थे। राधाकृष्णन् जी जब कलकत्ता यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर होकर गये थे, तब वहीं जाते थे। देखिए, उस समय स्वामीजी नहीं थे, पर उन्होंने उपनिषद् का अध्ययन करके यह बात कही थी। वहीं से, वेदान्त से ही स्वामीजी ने आदर्श लिया। वेदान्त का सरल अर्थ स्वामीजी ने ही बताया – त्याग और सेवा। उसका उद्देश्य 'आत्मनो मोक्षार्थं' है। आप लोगों को इस बात को बार-बार सोचना पड़ेगा कि इस संस्था का निर्माण इसलिए हुआ है कि यह 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' का आदर्श जन-सामान्य के सामने रखे। जब वह लक्ष्य हमारी आँखों के सामने रहेगा, तभी तो जन-सामान्य के सामने वह आदर्श रख सकेंगे। अगर हमारी आँखों के सामने नहीं है, हमारे जीवन में नहीं है, तो दूसरों के सामने कैसे रख सकेंगे?

कैसे लोगों को दिखेगा कि यह आदर्श है कि नहीं? यह आदर्श केवल बोर्ड और चित्र लगा देने से नहीं होगा। हमारे देश की यह परम्परा है। हम हिन्दुओं के रक्त में यह बात है कि हम आदर्श को केवल पुस्तकों और चित्र तक ही सीमित नहीं रखते, हम उसे जीवन में उतरता देखना चाहते हैं। भले ही आप स्वामी विवेकानन्द और अन्य सभी लोगों की हजारों फोटो लगा दें, बहुत बड़ा घण्टा लगाकर पूजा करें, बड़े से बड़ा उत्सव करें, खिलायें-पिलायें, हजारों लोगों को एकत्र कर लें, पर जब तक आपके जीवन में उसके आचरण का प्रयत्न नहीं होगा, आपकी-मेरी ओर कोई आकर्षित नहीं होगा।

अब आप-हम जो इन संस्थाओं से जुड़े हैं, हमें अपने जीवन की दिशा बदलनी है, जीवन में आदर्श का आचरण करना है, जो समाज को दिखे। वह आदर्श जीवन में कब दिखेगा? जब मेरे व्यक्तिगत जीवन में भी त्याग और सेवा की बात होगी। जब तक ये नहीं होगा तब तक कहीं नहीं दिख सकता।

इतना बड़ा रामकृष्ण संघ, यह कैसे सम्भव हुआ? रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर की प्रबन्ध समिति के प्रेसीडेन्ट हैं श्री देवधर शुक्ल जी और श्री भट्ट जी; जिन्होंने आश्रम के लिये अपना अमूल्य योगदान दिया। मैं कोई आत्मप्रशंसा की बात नहीं कर रहा हूँ। विवेकानन्द आश्रम, रायपुर रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ का एक आश्रम है। आज इतनी बड़ी सेवा यहाँ हो रही है। यह कैसे हुआ? इसके पीछे एक व्यक्ति का जीवन था। ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने अपना जीवन इसमें लगाया, त्याग और सेवा उनके जीवन में थी, तभी यह आश्रम प्रतिस्थापित हुआ। आप लोग भी जो संस्थाएँ चलाते हैं, आपमें से सभी ने अपने जीवन में त्याग किया है, अपना समय निकाला है, अपना धन लगाया है, तब ये संस्थाएँ आप चला रहे हैं। देश-विदेश में रामकृष्ण मिशन की जो संस्थाएँ हैं, जो आज बड़ी समृद्ध दिख रही हैं, ये संस्थाएँ हम लोगों के जन्म के पहले और कुछ हमारे बचपन में हमारे रामकृष्ण संघ के महान तपस्वी, त्यागी, संन्यासी, ऋषियों के त्याग से हुये। इन्दौर का आश्रम, जो इतना अच्छा रहा है, कैसे हुआ? श्रीमाँ सारदा के एक स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी महाराज, १९५७ में यहाँ आये। उन्होंने सोचा कि यहाँ कुछ काम होना चाहिए और यह आश्रम हुआ। नागपुर का रामकृष्ण मठ इतना पुराना और प्रसिद्ध आश्रम, जहाँ से हिन्दी और मराठी की पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, वहाँ से कितने लोग साधु हुए हैं। वह कैसे हुआ? इसके लिये ब्रह्मलीन स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी महाराज ने अपना जीवन लगा दिया।

(अगले अंक में समाप्त)

भजन एवं कविता

लो प्रणाम हे रामकृष्ण प्रभु

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

लो प्रणाम हे रामकृष्ण प्रभु, तुम ही पूर्ण ब्रह्म-अवतार।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश रूपधर, लीला करते अपरम्पार।।
तुम ही दस-अवतार-सार हो, तुम आश्रय हो इस संसार ।
तुम ही हो प्रभु परम सुधामय, वेदतत्त्व के तुम ही सार।।
त्रिगुणातीत प्रपंचरहित तुम, हरते हो तम का अँधियार ।
धर्मस्थापक पापविनाशक, ज्ञान-भक्ति के चिर आधार ।।
हृदयकमल में सदा विराजित, अद्वय रूप शान्ति-आगार ।
त्रितापहारी प्रभु करुणामय, दो तव चरनन भक्ति अपार ।।

राम भजन करु भाई रे

भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'

राम भजन करु, राम भजन करु राम भजन करु भाई रे!
राम भजन बिन सपने में भी जिय कै जरनि न जाई रे !!
निराकार साकार परम प्रभु राम ब्रह्म अवतारी हैं,
अवधविहारी ही क्या, वे तो अखिल लोक अधिकारी हैं,
मह-मह महक रही है जग में, राम सुयश फुलवाई रे !
राम भजन बिन सपने में भी जिय कै जरनि न जाई रे !!
मरुमरीचिका के मृगजल से प्यास नहीं बुझ पायेगी,
मत-मजहब की माया तुझको भव-वन में भरमायेगी,
एकमेव परमेश राम की रही सदा ठकुराई रे !
राम भजन बिन सपने में भी जिय कै जरनि न जाई रे ।।
लगा हुआ दिन-रात यहाँ तू केवल पाप कमाने में,
सच्चा सुख और शान्ति नहीं है, भौतिक भोग बढ़ाने में,
त्याग विषय-विष, राम भगति की पा ले अमृत मिठाई रे!
राम भजन बिन सपने में भी जिय कै जरनि न जाई रे !!

अभी भी नहीं हुए तेरे दर्शन

स्वामी वरेश्वरानन्द, रामकृष्ण मिशन, लखनऊ

बीत रहे दिन हैं मेरे, हूँ अति असहाय मैं,
अभी भी नहीं हुए तेरे दर्शन ।
यदि तुम धरो मेरा हाथ और रहो मेरे साथ,
तो हृदय में पाऊँगा, मैं तेरा दर्शन ।।

सदा सोचता हूँ मन में, भावी को कौन जाने,
व्यर्थ के कार्य में कट जाता है दिन ।
व्याकुल मन से, सोचूँ तेरा चरन,
लगता है आ गया, यह अन्तिम दिन ।।

संसार के अनेकों झमेलों में,
सारा जन्म व्यर्थ गया, हुआ नहीं तेरा अर्चन ।
हे प्रभु दयामय दूर करो सारा भय ।
कैसे स्थान पाऊँ तेरे चरन ।।

प्रार्थना तेरे चरण में, आओ मेरे हृदय में,
अन्तर में रहो तुम सदा जागरूक ।
तुम हो सर्वस्व सार, ले लो सब मेरा भार ।
दिखाओ प्रभु अपना स्वरूप ।।

शंकर नाचत उमंग

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

गिरिजा गणेश संग, कंठ शोभे नील रंग ।
भस्म लिप्त सकल अंग, जटाजूट बीच गंग ।।
भूत-प्रेत फिरत संग, गौरि बसे अर्ध अंग ।
बेरी-बेरी पिवत भंग, बाजत डमरू-मृदंग ।।
शंकर नाचत उमंग, उमड़त गंगा-तरंग,
डोलत विषधर भुजंग, डरपत मन देखि ढंग ।
त्रिभुवनपति असंग, भस्म जो कियो अनंग,
सकल सृष्टि करत भंग, सुर-नर-मुनि देखि दंग ।।

श्रीरामकृष्ण-गीता (५५)

(द्वादश अध्याय १२/३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

श्रीरामकृष्ण उवाच

अंशुश्चेद् वर्तते सूत्रे विश्लिष्टोऽल्पोऽपि कश्चन।
नैवायं सूचिकारन्ध्रे प्रविशति कदाचन।।२६।।

– जैसे सूत का एक भी रेशा बाहर निकले रहने से वह सूई के भीतर नहीं जाता है । ।२६।।

वासनारहितं शुद्धं यर्हि तद्वन्मनो भवेत्।
सच्चिदानन्दसंप्राप्तिस्तर्ह्येव सम्भविष्यति।।२७।।

– मन जब वासनारहित होकर शुद्ध हो जाता है, तभी सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है। ।२७।।

यो वा ईश्वरलाभाय साधनादिं चिकीर्षति।
मा भूत कथञ्चिदासक्तः कामिनीकांचनेषु सः।।२८।।

– जो लोग ईश्वरप्राप्ति करने के लिए साधन-भजन करना चाहते हैं, वे लोग किसी प्रकार से भी कामिनी-कांचन में आसक्त न हों।। ।२८।।

कामिनी-कांचनासंगः स्यात् केषाञ्चिन्मनागपि।
सिद्धावस्थार्जनोपायस्तेषां नास्ति कथञ्चन।।२९।।

– किसी का यदि थोड़ा सा भी कामिनी कांचन पर आकर्षण रहता है, तो उसे सिद्धावस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती है।।२९।।

निष्कलंका यथा लाजा भर्जनसमये च ये।
अम्बरीषाद् बहिर्यान्ति तृणमुत्क्षिप्य सत्वरम्।।३०।।

– जैसे भूजते समय जो लाई शीघ्र ही कड़ाही के ऊपर से बाहर निकल जाती हैं, उनमें कोई दाग नहीं लगता। ।३०।।

अपि भवन्ति शेषास्तु तत्र ये खल्लिकास्थिताः।
उत्तप्तसिकतास्पर्शात् कृष्णकलङ्कलाञ्छिताः।।३१।।

– जो लाई उस गरम बालू में कड़ाही में रह जाती हैं, वे गरम बालू के स्पर्श से काली हो जाती हैं।

न वित्ताय न पुत्राय न मानायैहिकादये।
ईश्वरो भजनीयः स्यात् कदा केनचिदेव च।।३२।।

– किसी को कभी धन, पुत्र आदि सांसारिक कामना के लिए नहीं, बल्कि केवल ईश्वर का ही भजन करना चाहिए।

सच्चिदानन्दलाभार्थं यः प्रार्थयति केवलम्।
ईश्वरं लभते लोकस्तत्कृपया स वै ध्रुवम्।३३।।

– जो लोग सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं, उन लोगों को उनकी कृपा से निश्चय ही ईश्वरप्राप्ति होती है।

यथा विश्वं न दृश्येत वायुविचालिते जले।
तद्वन्न भगवद्बिम्बमस्थिरे मानसे ह्रदे।।३४।।

– जैसे वायु चलने से जल के हिलने पर ठीक-ठीक प्रतिबिम्ब नहीं देखा जाता है, वैसे ही मनरूपी सरोवर के स्थिर न होने पर भगवद्-बिम्ब प्रकाशित नहीं होता है।

उत श्वसनकालेऽपि मनो भवति चंचलम्।
तस्माद् योगी स्थिरीकृत्य मनोऽग्रे कुम्भकेन हि।
कुरुते भगवद्ध्यानं ततो निरुद्धबुद्धिना।।३५।।

– श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ मन भी चंचल होता है। इसलिए योगी पहले कुम्भक के द्वारा मन को स्थिर करते हैं। उसके बाद उसी निरुद्ध अन्तःकरण के द्वारा भगवान का ध्यान करते हैं।

यो हि नैव प्रमुञ्चति स्वकीये भावमन्दिरे।
स एव सच्चिदानन्दमचिरेणाधिगच्छति।।३६।।

– जो भाव-घर में चोरी नहीं करता है, उसे ही शीघ्र सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

सारल्येन स वै लभ्यो विश्वासेन च केवलम्।
एतद्धि भगवत्प्राप्तेः परमं साधनद्वयम्।।३७।।

– केवल सरल भाव और विश्वास से ही उनको पाया जाता है। ये दोनों ही भगवान की प्राप्ति के परम साधन हैं। **(क्रमशः)**

वैदिक काल में परिवार संकल्पना

प्रज्ञा जोशी

परिवार शब्द 'परि' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से निष्पन्न हुआ है। इसलिए 'परिवार' का शाब्दिक अर्थ 'घेरनेवाला' है। संस्कृत भाषा में परिवार शब्द 'कुटुम्ब' के अर्थ में नहीं पाया जाता। वैदिक काल में परिवार का वाचक शब्द 'कुल' शब्द का अर्थ घर, परिवार, आवास इत्यादि है। उसमें रहनेवाले लोगों का समूह भी लाक्षणिक रूप में 'कुल' कहलाता है। इसी अर्थ में गृह, दम और धामन् भी प्रयुक्त होते हैं। परिवार मानव-समाज की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। यह मानव जाति में आत्मसंरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन के सातत्य को बनाये रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य मरणधर्मा है, किन्तु मानव जाति अमर है। व्यक्ति उत्पन्न होते हैं, बचपन, यौवन और बुढ़ापे की अवस्था भोग कर समाप्त हो जाते हैं, परन्तु वंश-परम्परा द्वारा उनका सन्तान-क्रम अविच्छिन्न रूप से चलता रहता है। मृत्यु और अमृतत्व दो विरोधी वस्तुएँ हैं, किन्तु परिवार के माध्यम से इन दोनों का समन्वय हुआ है। व्यक्ति भले ही मर जाएँ, पर विवाह और परिवार द्वारा मानव जाति अमर हो गई है।

परिवार की महत्ता का अनुभव करते हुए ही वैदिक युग में शिक्षा समाप्त करने पर प्रत्येक स्नातक को आचार्य यह उपदेश देते थे, सन्तान रूपी तन्तु का विच्छेद मत करो। इतना ही नहीं, पत्नी की अवहेलना, सन्तति-निरोध एवं अविवाहित व्यक्तियों से राष्ट्र की अतुलनीय और अपूरणीय क्षति होती है, इसका विस्तृत वर्णन अथर्ववेद में किया गया है। इसीलिए गृहस्थाश्रम को सभी धर्मों का आधार कहा गया है। महाभारत में भी कहा गया है कि जिस तरह छोटी-बड़ी नदियाँ समुद्र का आश्रय लेती हैं, उसी तरह दूसरे सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित रहते हैं।'

सृष्टि के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय संयुक्त परिवार हुआ करते थे। यह कहना चाहिए कि संयुक्त परिवार की प्रथा वेदकालीन पारिवारिक जीवन की एक विशेषता थी। वेदों में जहाँ कहीं पारिवारिक जीवन का उल्लेख है, उससे संयुक्त परिवार की प्रथा का ही बोध होता है। एक परिवार में एक साथ तीन

पीढ़ियों का परिगणन प्राय: मिलता है। ऋग्वेद में पुरोहित वर-वधू को यह आशीर्वाद देता है, इस घर में पुत्र-पौत्रों के साथ खेलते हुए और आनन्द का अनुभव करते हुए सम्पूर्ण आयु व्यतीत करो और कभी वियुक्त मत हो तथा वधू को यह आशीर्वाद कि तुम सास-ससुर, ननद, देवर आदि पारिवारिक जनों पर शासन करनेवाली साम्राज्ञी बनो। ये वचन संकेत देते हैं कि वेदकाल में अविभक्त परिवार हुआ करते थे। अथर्ववेद ने भी इस परम्परा को पुष्ट किया है। स्वापनसूक्त में परिवार के अनेक सदस्यों का उल्लेख है। सौमनस्य सूक्त में परिवार के सभी सदस्यों को प्रेमपूर्वक एक साथ रहने की प्रेरणा दी गई है।

अथर्ववेद में सौमनस्य सूक्तों में गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध में जो उदात्त भाव प्रकट किये गये हैं, वे भी वैदिक धारा की महान निधि हैं। इसमें सभी जनों में समभाव, परस्पर सौहार्द की भावना प्रकट की गई है। यह अभिलाषा प्रकट की गई है कि परिवार के सभी सम्बन्धी प्रेमपूर्वक मिलजुल कर रहें, क्योंकि समाज का मूल परिवार ही है। यह सौमनस्य प्रत्येक काल में रहे, जिससे समाज में कलह न हो और सभी कार्य सुचारु रूप से चलते रहें। फलत: राष्ट्र उन्नति करे और समृद्धि की प्राप्ति हो। स्नेह और सौहार्द का सन्देश आज के स्वार्थपरक युग में और भी आवश्यक है।

इस सूक्त में कहा गया है कि तुम एक-दूसरे से इस प्रकार प्रेम करो, जिस प्रकार गाय अपने नवजात बछड़े से प्रेम करती है। पुत्र पिता का आज्ञाकारी और माता के साथ

प्रीतियुक्त मनवाला हो। पत्नी अपने पति के साथ मधुर और शान्तिदायक वचन बोले। भाई-बहन भी परस्पर द्वेष न करें। ये सभी मंगलकारक रीति से एक-दूसरे के साथ प्रेम से सुखद सम्भाषण किया करें। जिस प्रकार के व्यवहार से विद्वान लोग परस्पर पृथक् भाव वाले नहीं होते और परस्पर कभी द्वेष नहीं करते, मैं उसी व्यवहार को तुम्हारे घर के लिए निश्चित करता हूँ। तुम लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करते हुए धनैश्वर्य को प्राप्त हो। आपस में वैर-विरोध मत होने दो। अपने सम्मान की रक्षा करो। अपने व्यवहार में सावधान रहो। एक-दूसरे के ऐश्वर्य में वृद्धि करो। एक दूसरे से मीठे वचन बोलते हुए अपना योगक्षेम करो। एक मनवाले होकर काम करो। एक साथ मिलकर खाओ-पियो। मैं तुमको एक साथ प्रेम-सूत्र में बाँधता हूँ। जिस तरह पहिए के आरे एक केन्द्र के चारों ओर घूमते हैं, उसी तरह तुम गृहस्थ रूपी केन्द्र के चारों ओर प्रेममय व्यवहार करते हुए रहो। तुम मिलकर यत्न करनेवाले बनो। बुद्धिमान व्यक्तियों की तरह अपने उत्तम समाज और राष्ट्र के हितों की रक्षा करो। प्रात: और सायं तुम्हारे मन में शुभ भाव रहे तथा प्रसन्नता का सदा निवास हो।' सौमनस्य सूक्तों का यह सन्देश आज भी प्रत्येक के लिये उतना ही अनुकरणीय है, जितना कि प्राचीन काल में था।

परिवार को सुखी रखने के लिये सौ हाथों से कमाने और हजार हाथों से बाँटने को कहा गया है – **शतहस्त समाहर, सहस्त्रहस्त संकिर।** ईश्वर द्वारा प्रदत्त वस्तु का उपभोग करने और दूसरे के धन के प्रति नि:स्पृह रहने से समाज सुव्यवस्थित रहता है। केवल अपने स्वार्थ में रहनेवाले व्यक्ति को ऋग्वेद में 'केवलाघो भवति केवलादी' कहा गया है।

परिवार के दैनिक कर्त्तव्यों में पंच महायज्ञ का स्थान महत्त्वपूर्ण था। ब्रह्मयज्ञ से वेदाध्ययन का तात्पर्य था। ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् भी गृहस्थाश्रम में वेदों का स्वाध्याय तो नियमित रूप से करना ही पड़ता था। पितृयज्ञ में तर्पण आदि द्वारा पितरों को तृप्त किया जाता था। देवयज्ञ में सायं-प्रात: अग्निहोत्र द्वारा विभिन्न देवताओं को आहुतियाँ प्रदान की जाती थीं। भूतयज्ञ में पाकशाला की अग्नि में भोजन का कुछ अंश डाला जाता था तथा कुत्ते, कृमि, गौ आदि के लिये भी भोजन का कुछ अंश भूमि पर रख दिया जाता था। नृयज्ञ या अतिथि यज्ञ में भोजनादि द्वारा किसी अभ्यागत का आदर-सत्कार किया जाता था।

वेदाध्ययन द्वारा बुद्धि एवं आत्मा का विकास, पितृयज्ञ द्वारा पितरों की स्मृति का नवीनीकरण, देवयज्ञ द्वारा धार्मिक क्रियाकलापों को प्रोत्साहन, भूतयज्ञ द्वारा जीवमात्र के प्रति दया का भाव तथा अतिथियज्ञ के द्वारा नागरिकता के भाव की परिपुष्टि आदि के द्वारा प्रत्येक परिवार अपने जीवन के विभिन्न अंगों को परिपुष्ट कर विकसित करता था।

गार्हपत्याग्नि पारिवारिक जीवन का केन्द्र बिन्दु थी। उसी अग्नि में कुछ धार्मिक विधियाँ सम्पादित की जाती थीं। उन्हें संस्कार कहा जाता था। परिवार के अनेक क्रिया-कलाप संस्कारों द्वारा संचालित किये जाते थे। बालक के जन्म लेते ही उसका जीवन एक धार्मिक ढाँचे में ढाला जाता था। ज्यों-ज्यों उसकी विभिन्न शक्तियों का विकास होता था, त्यों-त्यों उस विकास की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न संस्कारों द्वारा उसके जीवन को परिष्कृत किया जाता था। विद्योपार्जन के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश के अवसर पर एक महत्वपूर्ण संस्कार करते थे। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय वधू को जीवन के कर्तव्यों व उत्तरदायित्व से परिचित कराया जाता था। तथा पति-पत्नी धर्म, अर्थ, काम आदि की प्राप्ति के लिये मृत्युपर्यन्त एक धार्मिक बन्धन में बँध जाते थे। इसी प्रकार वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम में प्रवेश करते समय भी महत्त्वपूर्ण संस्कार सम्पादित किये जाते थे। अन्त में देहावसान होने पर अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता था। इस प्रकार वेदकालीन समाज में गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त षोडश संस्कारों द्वारा मानव-जीवन को परिमार्जित व परिष्कृत किया जाता था।

परिवारों में यम-नियम का पालन किया जाता था। प्रत्येक को ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, ध्यान, सत्य, नम्रता,

अहिंसा, अस्तेय, माधुर्य तथा इन्द्रियदमन आदि दस यमों का तथा स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अप्रमाद, अक्रोध आदि दस नियमों का सेवन करना पड़ता था। इनमें यम का पालन अनिवार्य था, किन्तु नियमों का पालन परिस्थितियों पर आश्रित रहता था। ये यम-नियम मानव-जीवन को नियन्त्रित करने में समर्थ होते थे। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता था। यज्ञ-सम्बन्धी क्रियाकलाप विविध संस्कार, नित्य-नैमित्तिक कर्म आदि का तत्कालीन पारिवारिक जीवन में विशेष स्थान था।

वेदकाल में चार वर्ण और चार आश्रमों की व्यवस्था थी। 'वर्ण' शब्द का अर्थ है 'अपने गुण के अनुसार कर्म का चयन करना।' 'आश्रम नाम है स्थिति का। वर्ण का सम्बन्ध समूहगत जीवन में भावात्मक एकता से था और आश्रम-व्यवस्था व्यक्तिगत जीवन की सुव्यवस्था थी।

वर्ण-व्यवस्था में समाज के विविध समुदाय अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करते थे। इससे समाज में संघर्ष का अभाव था और परस्पर भावनामय एकता थी। ब्राह्मण वर्ग विद्या-प्रचार करता था और शिक्षा विभाग सँभालता था। क्षत्रिय वर्ग समाज और राष्ट्र की भीतरी शान्ति बनाये रखकर राष्ट्र-रक्षा करता था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सहयोग राष्ट्रोन्नति के लिए अनिवार्य था। समय आने पर ब्राह्मण के लिए भी शस्त्रधारण करने का विधान था। वैश्य वर्ग खेती, पशुपालन और व्यापार द्वारा राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाता था। शूद्रवर्ग त्रिवर्ण की सेवा करके सब वर्णों के साथ सुख और शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता था। इस योजना में बुद्धि और श्रम का समविभाजन था, सहयोग और मैत्री थी, व्यवहार और कौशल था। लोग योग्यतानुसार शिक्षण प्राप्त कर अपने-अपने क्षेत्र में उच्चतम स्थान प्राप्त करते थे। इसलिए बेकारी का अभाव था। धर्ममय जीवन की मर्यादा होने से प्रजोत्पत्ति कम थी। प्रत्येक व्यक्ति को जीविका का साधन उपलब्ध था। वर्ण और जातियों में परस्पर कोई छोटा या बड़ा न था।

जिस प्रकार वर्णों में समानता एवं सहयोग था, उसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन में भी सबकी उन्नति थी। गृहस्थाश्रम पंचयज्ञ द्वारा सम्पन्न होता था। प्रत्येक घर में सन्ध्या, देवपूजा, ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव, अग्निहोत्र होता था। पितृयज्ञ द्वारा दिवंगत सम्बन्धियों का स्मरण होता था। इस प्रकार उन लोगों के प्रति निरन्तर पूज्य भाव रहता था। जगत के सभी जीवों को अन्न-जलादि दान से तृप्त करने की भावना कर्त्तव्य के रूप में सदा रहती थी। जीवित माता-पिता और परिवार के असहाय व्यक्तियों की सेवा, तृप्ति और सहायता व्यक्ति का धर्म था। अतिथि-सत्कार और विश्वदेव बलि से पशु-पक्षी और जीव-जन्तु तक कोई भी भूखा, प्यासा नहीं रहता था। आयुष्य और कर्त्तव्य की दृष्टि से इन आश्रमों का क्रम इस प्रकार किया गया है – बाल्यावस्था में व्यक्ति विद्याभ्यास करे, युवावस्था में गृहस्थ धर्म का पालन करे। वृद्धावस्था में गृहस्थ धर्म से निवृत्त होकर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करे और जीवन के अन्तिम चरण में मोक्ष-प्राप्ति के लिये संन्यासी बने। संक्षेप में वर्णव्यवस्था से सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था से व्यक्तिगत जीवन में शान्ति थी।

यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक युग में संयुक्त परिवार की प्रथा टूट रही है। परिवारों के अलग हो जाने से बच्चों की परवरिश एक समस्या बन गई है। हिन्दू संस्कृति में विवाह एक संस्कार था, जो अब एक करार भर बन चुका है। विवाह केवल उपभोग का साधन बन गया है। इसीलिए छोटी-छोटी बातों पर विवाह-विच्छेद हो रहे हैं। इसका कुप्रभाव सन्तानों पर पड़ रहा है। घर के बड़े बुजुर्गों का निर्वाह वृद्धाश्रमों में हो रहा है। संस्कार एवं यम-नियम के अभाव से समाज में दुराचार, व्यभिचार, पापाचार भ्रष्टाचार बढ़ रहे हैं। यज्ञ और अग्निहोत्र की परम्परा नष्ट हो रही है। कौटुम्बिक संघर्षों के कारण घरों में तनावपूर्ण वातावरण बन रहा है। जीवन में से सुख-शान्ति चली गई है। इसके स्थान पर महँगाई, दरिद्रता, निवास, कपड़े आदि की समस्याएँ, छुआछूत, असमानता, बेकारी, निरक्षरता, दहेज आदि अनिष्ट प्रथाएँ और चरित्र आदि की अनेक समस्याएँ आज हमारे सामने मुँह पसारे खड़ी हैं।

ऐसी विषम परिस्थितियों में वेदकालीन संस्कृति प्राचीनतम होने पर भी, आज भी युगदृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। वेदकालीन संस्कृति का मुख्य तत्त्व देश तथा काल की सीमाओं से बाधित नहीं है, बल्कि सर्वदेशीय एवं सार्वभौमिक है। हमारे महर्षियों ने पहले भी मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन किया था और आज भी उनका कथन यथार्थ द्वेष, वैमनस्य, हिंसा से पीड़ित मानवता के त्राण में उपकारक होगा। ○○○

(भारतीय धरोहर-मार्च-अप्रैल-२०१७ से साभार)

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो आचंडाल प्रेमघन विग्रह, दिव्य प्रेम विस्तार करैं ।
जो मातृ स्नेह संस्पर्श दान से, सर्व दोष परिहार करैं ।
जो अखिल विश्व मानवता में, देवत्व भाव संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१।।

जो ब्रह्मतत्त्वविज्ञानी सब, संशय-कुतर्क परिहार करैं ।
जो दिव्य-प्रेम मातृत्व-सूत्र में, बाँध सहज स्वीकार करैं ।
जो स्वार्थरहित परसेवा में ही, ईश्वर-साक्षात्कार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।२।।

जो जड़ विज्ञानोत्पन्न तर्क, संशय-राक्षस का नाश करैं ।
जो क्षमामूर्ति, उद्वेगरहित, आसक्तिशून्य हो वास करैं ।
जो ज्ञान-कर्म का चक्र चलाकर, बुद्धि-दोष परिहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।३।।

जो ईश्वर के अगणित रूपों का, दर्शन-साक्षात्कार करैं ।
जो गुप्त भजन-साधन करके, मातृत्व-भाव-विस्तार करैं ।
जो प्रबल आत्मविश्वास रूप, नूतन युगधर्म प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।४।।

जो ईश्वर सत्य, अनित्य जगत्, उद्घोष यही बहु बार करैं ।
जो जग–प्रपंच में रहकर, मैं-मेरा विरहित आचार करैं ।
जो त्यागी-वैरागी होकर, पर-सेवा व्रत स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।५।।

जो प्रेमोन्मत्त समुद्र सदृश ईश्वर प्रेमामृत दान करैं ।
जो दिव्य-प्रेम-वात्सल्य भाव से, निर्मल निज संतान करैं ।
जो परदुखमोचन को संन्यासी, कर्म पुकार प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।६।।

जो सदा नाम-यश इच्छा विरहित, ईश्वरमय हो वास करैं ।
जो पवित्रता रूपिणी सारदा, भव-विपदा का नाश करैं ।
जो विश्वविजय करके भी भारत, हेतु रुदन बहु बार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।७।।

जो सर्वधर्मविग्रह-स्वरूप, अति निराभिमान आचार करैं ।
जो ममता-करुणाघन-विग्रह, मातृत्व स्नेह संचार करैं ।
जो नर-नारायण सेवा को, अध्यात्म-सार स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८।।

जो सदा-सर्वदा ईश्वर चिन्तन, या हरि चरित बखान करैं ।
जो भक्तों की सेवा करके भी, अगणित जप-तप-ध्यान करैं।
जो आत्ममोक्ष के साथ जगत्हित, शुभादर्श स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९।।

जो रामकृष्ण शुभ नामामृत, देकर भव सागर पार करैं।
जो मातृ-स्नेह-छाया देकर, शीतल मन-प्राण अपार करैं। ।
जो आत्मभाव को जाग्रत कर, निर्भयता-मंत्र प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१०।।

जो पूर्ण त्याग को ही निज, अंगाभरण रूप स्वीकार करैं ।
जो धैर्य क्षमा, परदुखमोचन, का सरल जीवनाचार करैं ।
जो गुरु-संदेशों पर चलकर, युगधर्म-प्रचार-प्रसार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११।।

जो खुले नेत्र से और भाव में, ईश्वर-साक्षात्कार करैं ।
जो सन्तानों-भक्तों में ही निज, इष्ट दरश साकार करैं ।
जो परदुखकातर सबको ही, अव्यक्त ब्रह्म स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२।।

जो प्रबल कीर्तनानन्द-दान से, भक्तों का भव-ताप हरैं ।
जो निर्जन में प्रार्थना-अश्रु से, पाप-ताप-संताप हरैं ।
जो कृपा मात्र से प्रगति, मोक्ष, या भक्ति-भाव संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१३।।

जो दिव्य प्रेम उन्मत्त किन्तु, निज वश में रह रसपान करैं ।
जो दिव्यानन्द स्वरूपा जग में, वही दिव्य रस-दान करैं ।
जो निजानन्द रस पीकर जगहित, में वह सुख परिहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४।।

(क्रमशः)

महाशिवरात्रि विशेष

शिव के पंचमुख स्वरूप

डॉ. अश्विनी पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर ज्योतिष विभाग केन्द्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ

सावन माह में भगवान शिव के पंचमुख अवतार की कथा पढ़ने और सुनने का बहुत माहात्म्य है। यह प्रसंग मनुष्य के भीतर शिव-भक्ति जाग्रत करता है। जगत के कल्याण की कामना से भगवान सदाशिव के विभिन्न कल्पों में अनेक अवतार हुए। इनमें उनके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान अवतार प्रमुख हैं और यही भगवान शिव की पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ हैं।

भगवान शिव का विष्णुजी से अनन्य प्रेम है। शिव तामस मूर्ति हैं और विष्णु सत्त्व मूर्ति, किन्तु एक-दूसरे का ध्यान करने से शिव श्वेत वर्ण के और विष्णु श्याम वर्ण के हो गए।

ऐसा माना जाता है कि एक बार भगवान विष्णु ने अत्यन्त मनोहर किशोर का रूप धारण किया। भगवान विष्णु द्वारा धारण किए इस मनोहर रूप को देखने के लिये चतुरानन ब्रह्मा, बहुमुख वाले अनन्त, सहस्राक्ष इन्द्र आदि देवता आए और प्रसन्न हुए। सभी देवताओं ने एक मुख वालों की अपेक्षा भगवान के रूप माधुर्य का अधिक आनन्द लिया। सभी को उस रूप का आनन्द लेते देख भगवान शिव सोचने लगे कि यदि मेरे भी अनेक मुख और नेत्र होते, तो मैं भी भगवान के इस किशोर रूप का सबसे अधिक दर्शन करता। भगवान शिव के मन में इस इच्छा के उत्पन्न होते ही वे पंचमुख हो गए।

'पंचानन' और पंचवक्त्र' शिव – इच्छा से उत्पन्न भगवान शिव के ये पाँच मुख सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर तथा ईशान हुए और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र बन गए। भगवान शिव तभी से 'पंचानन' या पंचवक्त्र' कहलाने लगे।

भगवान शिव के ये पाँच मुख चार दिशाओं और पाँचवाँ मध्य में है। भगवान शिव का पहला मुख पश्चिम दिशा में है, जो है 'सद्योजात'। यह बालक के समान स्वच्छ, शुद्ध एवं निर्विकार है। उत्तर दिशा का मुख 'वामदेव' है। वामदेव अर्थात् विकारों का नाश करनेवाला। दक्षिण मुख 'अघोर' है। अघोर का अर्थ है – निन्दित कर्म करनेवाला। निन्दित कर्म करनेवाला भी भगवान शिव की कृपा से निन्दित कर्म को शुद्ध बना लेता है। भगवान शिव के पूर्व मुख का नाम 'तत्पुरुष' है। तत्पुरुष का अर्थ है – अपनी आत्मा में स्थित

रहना। वहीं अन्तिम ऊर्ध्व मुख का नाम 'ईशान' है। ईशान का अर्थ है – स्वामी। भगवान शंकर के पाँच मुखों में ऊर्ध्व मुख ईशान दुग्ध जैसे रंग का, पूर्व मुख तत्पुरुष पीत वर्ण का, दक्षिण मुख अघोर नील वर्ण का, पश्चिम मुख सद्योजात श्वेत वर्ण का और उत्तर मुख वामदेव कृष्ण वर्ण का है।

पंचमुख के पंचकृत्य – शिव पुराण में भगवान शिव कहते हैं, ''सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह, ये पाँच कार्य मेरे पाँचों मुखों द्वारा धारित हैं।'' इस बात से स्पष्ट होता है कि भगवान शिव की पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ (मुख) विभिन्न कल्पों में लिये गये उनके अवतार हैं। माना गया है कि जगत के कल्याण की कामना से भगवान सदाशिव के विभिन्न कल्पों में अनेक अवतार हुये, जिनमें से सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान अवतार प्रमुख हैं। ये ही भगवान शिव की पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ (मुख) हैं।

अपने पाँच मुख रूपी विशिष्ट मूर्तियों का रहस्य माता अन्नपूर्णा को बताते हुए भगवान शिव कहते हैं, ''ब्रह्मा मेरे अनुपम भक्त हैं। उनकी भक्ति के कारण मैं प्रत्येक कल्प में

दर्शन देकर उनकी समस्या का समाधान किया करता हूँ।''

पहला अवतार 'सद्योजात' – श्वेत लोहित नाम के उन्नीसवें कल्प में ब्रह्मा सृष्टि-रचना के ज्ञान के लिये परब्रह्म का ध्यान कर रहे थे। तब भगवान शंकर ने उन्हें अपने ही अवतार 'सद्योजात' रूप में दर्शन दिए। इसमें वे एक श्वेत और लोहित वर्णवाले शिखाधारी कुमार के रूप में प्रकट हुए और 'सद्योजात मन्त्र' देकर ब्रह्माजी को सृष्टि-रचना के योग्य बनाया।

दूसरा अवतार 'वामदेव' – रक्त नामक बीसवें कल्प में रक्त वर्ण ब्रह्मा पुत्र की कामना से परमेश्वर का ध्यान कर रहे थे। उसी समय उनसे एक पुत्र प्रकट हुआ, जिसने लाल रंग के वस्त्र-आभूषण धारण किए थे। यह भगवान शंकर का दूसरा अवतार 'वामदेव' रूप था, जो ब्रह्माजी के जीव-सुलभ अज्ञान को हटाने और सृष्टि-रचना की शक्ति देने के लिए हुआ था।

तीसरा अवतार 'तत्पुरुष' – भगवान शिव का 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार पीतवासा नाम के इक्कीसवें कल्प में हुआ। इसमें ब्रह्मा पीले वस्त्र, पीली माला और पीला चन्दन धारण कर जब सृष्टि रचना के लिये व्यग्र होने लगे, तब भगवान शंकर ने उन्हें 'तत्पुरुष' रूप में दर्शन देकर इस गायत्री मन्त्र का उपदेश किया – 'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रूद्रः प्रयोदयात्। इस मंत्र के अद्भुत प्रभाव से ब्रह्मा सृष्टि की रचना में समर्थ हुए।

चौथा अवतार 'अघोर' – शिव नामक कल्प में भगवान शिव का 'अघोर' नामक चौथा अवतार हुआ। ब्रह्मा जब सृष्टि रचना के लिए चिन्तित हुए, तब भगवान ने उन्हें 'अघोर' रूप में दर्शन दिए। भगवान शिव का यह अघोर रूप महाभयंकर है, जिसमें वे कृष्ण-पिंगल वर्ण वाले, काला वस्त्र, काली पगड़ी, काला यज्ञोपवीत और काला मुकुट धारण किये हुए हैं तथा मस्तक पर चन्दन भी काले रंग का है। भगवान शंकर ने ब्रह्माजी को 'अघोर मन्त्र' दिया, जिससे वे सृष्टि-रचना में समर्थ हुए। यह मन्त्र अत्यन्त रहस्यमय और शक्तिशाली है।

पाँचवा अवतार 'ईशान' – विश्व रूप नामक कल्प में भगवान शिव का 'ईशान' नामक पाँचवाँ अवतार हुआ। ब्रह्माजी पुत्र की कामना से मन-ही-मन शिव जी का ध्यान कर रहे थे। उसी समय सिंहनाद करती हुईं सरस्वती के साथ भगवान 'ईशान' प्रकट हुए। शिवजी के इस अवतार का रंग स्फटिक के समान उज्ज्वल वर्ण था। अवतरण के बाद भगवान ईशान ने सरस्वती सहित ब्रह्माजी को सन्मार्ग का उपदेश देकर कृतार्थ किया। OOO

पृष्ठ ६७ का शेष भाग

कुछ छोड़ देता है।' यह भावना किसी भी शास्त्रीय व्याख्या से परे थी, किन्तु ईश्वर की सहज प्राप्ति का प्रमाण थी।

माँ सारदा देवी ने भी उनके जीवन और भक्ति की सच्चाई को स्वीकार किया। 'श्रीश्री माँ ओ सप्तसाधिका' में उल्लेख है कि माँ ने कहा – 'उसकी भक्ति सच्ची है, वह झूठ नहीं बोलती। उसका गोपाल सजीव है।' इससे सिद्ध होता है कि गोपाल की माँ एक भावुक महिला नहीं थीं, वे एक सच्ची साधिका थीं, जिनकी साधना शुद्ध, प्रेममय और आत्मा से जुड़ी हुई थी।

आज के युग में जहाँ लोग केवल ईश्वर को बाह्य अनुष्ठानों और जटिल विधियों में खोजते हैं, वहाँ गोपाल की माँ का जीवन शिक्षा देता है कि ईश्वर केवल मन्दिर में ही नहीं, प्रेम में बसते हैं। नारी यदि अपने मातृत्व को आध्यात्मिक बना ले, तो वह स्वयं को ईश्वर के सबसे निकट पा सकती है। गोपाल की माँ ने नारीत्व को ईश्वत्व से जोड़ा, उन्होंने सिद्ध कर दिया कि एक माँ की गोद ईश्वर का निवास हो सकती है।

उनकी यह कथा केवल अतीत की स्मृति नहीं है, यह आज भी हर उस व्यक्ति के लिये प्रेरणा है, जो यह सोचता है कि भक्ति कठिन है। वे सिखाती हैं कि यदि प्रेम सच्चा हो, हृदय निर्मल हो और विश्वास अडिग हो, तो ईश्वर को मन्दिर की मूर्ति में ही नहीं, अपने घर के आँगन में, अपने मन के कोने में, और अपने हृदय के आँचल में भी पाया जा सकता है। OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** श्रीश्रीमाँ ओ सप्तसाधिका, संकलक – स्वामी चेतनानन्द, रामकृष्ण मठ, प्रकाशन **२.** 'रामकृष्ण भक्तमालिका' – स्वामी गम्भीरानन्द **३.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत – महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्रीम' **४.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग – स्वामी सारदानन्द

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/६)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण ने जब ऐसा वर्णन किया, तो अर्जुन के मन में बड़ा लोभ आया कि जो इस प्रकार तीन गुणों को जीत लेता है, वह दुखत्रय को पार कर जाता है, उसके लक्षण क्या होते होंगे? अर्जुन ने पूछा –

गुणातीत व्यक्ति के सम्बन्ध में अर्जुन के तीन प्रश्न

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।।२१।।

अर्जुन उवाच (अर्जुन बोला) एतान् त्रीन् गुणान् अतीत: (इन तीनों गुणों से अतीत पुरुष) कै: लिंगै: भवति (किन लक्षणोंवाला होता है) च किमाचार: (और किस प्रकार आचरण करता है) प्रभो कथम् एतान् (हे प्रभो! मनुष्य कैसे इन) त्रीन् गुणान् अतिवर्तते (तीनों गुणों से अतीत होता है)?

"इन तीनों गुणों से अतीत पुरुष किन लक्षणों वाला होता है और किस प्रकार आचरण करता है? हे प्रभो! मनुष्य कैसे इन तीनों गुणों से अतीत होता है?"

अर्जुन ने ये प्रश्न पूछे कि इन तीन गुणों को जीतनेवाला पुरुष किन-किन गुणों से युक्त होता है? उसके लक्षण क्या हैं? किमाचार: – वह किस तरह व्यवहार करता है? और इन तीनों गुणों को कैसे पार किया जाता है? अर्जुन इस प्रकार इन तीन प्रश्नों को पूछता है। अर्थात् ये लक्षण हमें मालूम हो जाएँ, तो हम भी उन गुणों को अपने

जीवन में लाने की चेष्टा कर सकते हैं। इसी तरह का प्रश्न दूसरे अध्याय में भी आता है। जहाँ पर अर्जुन ने स्थितप्रज्ञ के विषय में श्रीकृष्ण से प्रश्न पूछे थे। यहाँ भी उसी प्रकार तीन गुणों के अतीत जानेवाले के लक्षण के बारे में पूछा है। तो ये लक्षण क्या हैं?

किसी में लक्षण हैं, तो हम पहचान सकते हैं क्या? हम कैसे पहचानेंगे? उसके आचरण से पहचानेगें। उसके मन के भीतर की बातें तो हम नहीं जान सकते, पर उसका व्यवहार कैसा है, यह हम अवश्य ही जान सकते हैं। अर्जुन को ऐसा लगा कि यदि वह इन तीनों गुणों को पार करने में समर्थ हुआ, तो भगवान कृष्ण बताएँगे कि वे गुण उसके भीतर बचे हैं क्या? अपने भीतर की अवस्था की जाँच करने के लिए ये लक्षण आवश्यक हैं। दूसरे और बारहवें अध्याय में हमने इस पर चर्चा की है, जहाँ पर भगवान ने उन लक्षणों का वर्णन किया है। दूसरे अध्याय में ज्ञान की दृष्टि से उन लक्षणों का वर्णन है तथा बारहवें अध्याय में भक्ति के सन्दर्भ में उन लक्षणों पर विचार किया जा चुका है। इसलिये हम उनके विषय में यहाँ विस्तार से नहीं जायेंगे। इसके उत्तर में भगवान कहते हैं –

गुणातीत व्यक्ति गुणों से विचलित नहीं होता

श्रीभगवान उवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।२२।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) पाण्डव (हे अर्जुन!) प्रकाशम् च प्रवृत्तिम् च मोहम् (प्रकाश प्रवृत्ति और मोह से) एव न सम्प्रवृत्तानि द्वेष्टि (प्रवृत्त होने पर न उनसे द्वेष करता है) च न निवृत्तानि कांक्षति (और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है)।

''हे अर्जुन! (ऐसा व्यक्ति) प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह से प्रवृत्त होने पर न उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।''

यह एक लक्षण बताया। प्रकाश सत्त्वगुण का लक्षण है, प्रवृत्ति रजोगुण का लक्षण है और मोह तमोगुण का लक्षण है। जब ये तीनों गुण पुरुष के जीवन में आते हैं, तो उसके जीवन में कोई स्पृहा नहीं आती। वह निर्लिप्त बना रहता है। उसके जीवन में जब रजोगुण की वृत्ति आती है, तो उसे निकालने की वह चेष्टा नहीं करता। वह उसे अपने आप निकल जाने देता है। वह चंचल नहीं होता। उसके जीवन में तमोगुणी वृत्ति भी आती है, पर उसके लिए वह अपने आपको परेशान नहीं करता है। ये जो तीनों गुणों के ऊपर पहुँचा हुआ पुरुष है, उसके जीवन में रजोगुण भी आता है, तमोगुण भी आता है और सत्त्वगुण की प्रबलता भी आती है। जब सत्त्वगुण की प्रबलता आती है, तो उसे कम होते देखकर रोककर नहीं रखना चाहता। वह जानता है कि इन गुणों का स्वभाव ही ऐसा होता है। इस प्रकार ये सब गुण प्रबल होते हैं, तब भी विचलित नहीं होता और जब निकलने लगते है, तब भी चंचल नहीं होता। यह उस पुरुष की स्थिति होती है, जिसका यहाँ वर्णन किया गया है। जैसे आप लोग अभी बैठकर प्रवचन सुन रहे हैं, तब तो आपका सत्त्वगुण प्रबल होना चाहिए। पर यदि तमोगुण प्रबल हो गया, तो नींद आने लगेगी। यह तो उलटा पड़ गया। और जब हम सोने गये हैं, पर मन में सारी योजनाएँ बन रही हैं। रजोगुण प्रबल हो गया, तब तो नींद ही नहीं आएगी। आएगी भी कैसे? क्योंकि गलत समय में रजोगुण प्रबल हो गया है। पर अपने ठीक समय में हर एक गुण का प्रबल होना लाजमी है, आवश्यक है। परन्तु गुणों के अतीत चला गया हुआ मनुष्य समझता है कि ये गुण आते हैं और चले भी जाते हैं। प्रभु श्रीकृष्ण पुन: कहते हैं –

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।२३।।

य: उदासीनवत् आसीन: (जो उदासीन रहता हुआ) गुणै: न विचाल्यते (गुणों से विचलित नहीं होता) गुणा: एव वर्तन्ते (और गुण ही बरत रहे हैं) इति य: अवतिष्ठति (ऐसा वह स्थित रहता है) न इंगते (विचलित नहीं होता)।

''जो उदासीन रहता हुआ गुणों से विचलित नहीं होता और गुण ही (गुणों में) बरत रहे हैं, ऐसा (समझता हुआ) वह (एकात्मभाव से) स्थित रहता है, विचलित नहीं होता।''

यहाँ पर कहते हैं – उदासीनवत् आसीन: – गुण अपने गुणों में बरत रहे हैं, ऐसा मानकर वह विचलित नहीं होता है। क्योंकि उसका विश्वास है कि ये गुण ही गुणों में बरतते हैं। और ऐसा करके वह परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है। मन में किसी प्रकार का विचलन नहीं पैदा करने देता। यह उसका लक्षण होता है। फिर से प्रभु लक्षणों की बात करते हैं –

गुणातीत व्यक्ति के अन्य लक्षण

समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकाञ्चन:।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति:।।२४।।

स्वस्थ: (जो निरन्तर) समदु:खसुख: (दुख सुख में समान) समलोष्टाश्मकांचन: (मिट्टी पत्थर और स्वर्ण में समान भाववाला) धीर: तुल्यप्रियाप्रिय: (धीर, प्रिय और अप्रिय को समान माननेवाला) तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति: (निन्दा, स्तुति में समान भाववाला है)।

''जो निरन्तर दुख-सुख में समान, मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाववाला, धीर, प्रिय और अप्रिय को समान माननेवाला, निन्दा, स्तुति में समान भाववाला है।''

यहाँ पर कह रहे हैं कि सुख के भी प्रसंग आते हैं, दु:ख के भी प्रसंग आते हैं। इन दोनों में उस गुणातीत हुए व्यक्ति की बुद्धि में समता रहती है। उसकी बुद्धि विचलित नहीं होती है। दु:खों में अपने आपको सम्भालकर रखता है। सुखों में स्पृहा को आने नहीं देता। वह यह नहीं सोचता कि यह सुख बहुत दिनों तक टिका रहे। समलोष्टाश्मकाञ्चन: – यहाँ पर लोभ की वृत्ति का अभाव बताया गया है। प्रिय और अप्रिय वस्तुस्थितियों में भी वह समचित्त बना रहता है। जैसा ज्ञान के सन्दर्भ में दूसरे अध्याय में बताया गया है, यहाँ भी उन्हीं बातों का अलग ढंग से विवेचन किया गया है। **(क्रमश:)**

श्रीरामकृष्ण की अद्भुत दिव्य वाणी

स्वामी पद्माक्षानन्द
सह-सम्पादक, विवेक ज्योति,
रामकृष्ण मिशन विववेकानन्द आश्रम, रायपुर

युगावतार श्रीरामकृष्ण के उपदेश हिन्दी भाषा में 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' के नाम से प्रसिद्ध है। यह अँग्रेजी में 'Gospel of Sri Ramakrishna' के नाम से सुपरिचित है। अंग्रेजी का Gospel शब्द छः अक्षरों से मिलकर बना है। यदि हम गोस्पेल के इन छः अक्षरों पर एक अलग दृष्टिकोण से विचार करें, तो श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का सार प्राप्त हो सकता है और इससे हमें उनके बहुमूल्य उपदेशों को स्मरण रखने और अपने जीवन में कार्यान्वित करने में सहायता मिल सकती है। श्रीरामकृष्ण के उपदेश संन्यासियों और गृहस्थों; दोनों के लिए समान रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। समयाभाव के कारण आधुनिक मनुष्य श्रीरामकृष्ण के अमूल्य उपदेश से वंचित हो जा रहा है। इसलिए श्रीरामकृष्ण के उन उपदेशों को यहाँ पर संक्षिप्त रूप से दिया जा रहा है, जिससे समयाभाव वाले लोग भी श्रीरामकृष्ण के उन दिव्य उपदेशों का अमृतपान करके धन्य हो सकें।

श्रीरामकृष्ण देव का कमरा, दक्षिणेश्वर

सार वस्तु ही हमें लेना चाहिए। श्रीरामकृष्ण भी इसी बात की शिक्षा देते हुए कहते हैं : ''सच कहता हूँ, मुझे इस बात का जरा भी दुख नहीं होता कि मैंने वेदान्त आदि शास्त्र नहीं पढ़े। मैं जानता हूँ, वेदान्त का सार है – 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है।'' फिर गीता का सार क्या है? गीता का दस बार उच्चारण करने पर जो होता है, अर्थात् त्यागी, त्यागी!''[१]

आइयें हम इस Gospel शब्द के प्रत्येक अक्षर को अलग-अलग करके उसके साथ श्रीरामकृष्ण के उपदेशों को देखें। जैसे – G,O,S,P,E,L.

G = God alone is real; everythings is unreal. God realization is a main goal of human life. And God can be realise by many paths. As many faiths so many paths. अर्थात् ''ईश्वर नित्य हैं और सब अनित्य। ईश्वर को प्राप्त करना ही मनुष्य का उद्देश्य हैं। सभी धर्म सत्य हैं। जितने मत हैं उतने ही पथ हैं।''

O = Objects Analysis (वस्तु-विचार या सत्-असत् विचार)

S = Satsang; Sadhu Sanga, Solitude life (live in) (सत्संग, साधु-संग और एकान्तवास करो।)

P = Prayer and power of Attorny give to God (प्रार्थना या ईश्वर को आम-मुखत्यारी दे दो।)

E = Earnestness for God Realization (ईश्वर-दर्शन के लिये व्याकुलता)

L = Lust and Gold is Maya. Renounce lust and Gold. (कामिनी-कांचन माया है। कामिनी-कांचन का त्याग करो।)

गोस्पेल Gospel का प्रथम अक्षर (G) हैं। G = God alone is real, everythings is unreal. God realization is a man goal of humanlife. And God can be realise by many paths. As many faiths as many paths. – ईश्वर नित्य हैं और सब अनित्य। ईश्वर को प्राप्त करना ही मनुष्य का उद्देश्य है। सभी धर्म सत्य हैं – जितने मत हैं, उतने ही पथ हैं।

श्रीरामकृष्ण की सबसे प्रमुख शिक्षा है – ईश्वर नित्य हैं

और सब अनित्य। ईश्वर को प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में इसका आचरण करके सबको दिखाया है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – देखो, ईश्वर का दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है। व्याकुल होकर एकान्त में गुप्त रूप से उनका ध्यान-चिन्तन करना चाहिए और रो-रोकर प्रार्थना करनी चाहिए, 'प्रभो, मुझे दर्शन दो।' - १९९८

रविवार, १५ जून १८८४ ई. को श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र के बगीचे में आए हुए थे। वहाँ पर एक भक्त ने उनसे प्रश्न पूछा – क्या कर्म जीवन का उद्देश्य है? ठाकुर शम्भु मल्लिक का दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि कर्म जीवन का उद्देश्य नहीं है।

श्रीरामकृष्ण – जीवन का उद्देश्य है ईश्वर-लाभ, कर्म तो आदिकाण्ड है, वह जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। निष्काम कर्म एक उपाय हो सकता है, परन्तु वह भी उद्देश्य नहीं है।

''शम्भु कहता था, अब ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि जो रुपये हैं, उनका सदुपयोग कर सकूँ – अस्पताल, दवाखाना, रास्ताघाट, कुआँ तैयार करने में लग जायें। मैने कहा, ये सब काम अनासक्त होकर कर सको, तो अच्छा है, परन्तु है यह बड़ा कठिन। और चाहे जो हो, कम से कम इतना याद रहे कि तुम्हारे जीवन का उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति है – अस्पताल और दवाखाना बनाना नहीं। सोचो कि ईश्वर तुम्हारे सामने आये, आकर तुमसे कहा, कोई वर माँगो। तो क्या तुम उनसे कहोगे, मेरे लिये कुछ अस्पताल और दवाखाने बनवा दो या यह कहोगे, 'हे भगवन्, तुम्हारे पदापद्मों में मेरी शुद्धा भक्ति हो, मैं तुम्हें सब समय देख सकूँ।'' अस्पताल, दवाखाना ये सब अनित्य वस्तुएँ हैं। एकमात्र ईश्वर वस्तु हैं और सब अवस्तु। उन्हें प्राप्त कर लेने पर जान पड़ता है, कर्ता वे ही हैं, हम लोग अकर्ता हैं। तो फिर क्यों उन्हें छोड़कर इतने काम इक्ट्ठे कर हम अपनी जान दें? उन्हें पा लेने पर उनकी इच्छा से कितने ही अस्पताल और दवाखाने हो जायेंगे।

''इसीलिए कहता हूँ, कर्म आदिकाण्ड है, कर्म जीवन का उद्देश्य नहीं है, साधना करके और भी आगे बढ़ जाओ। साधना करते हुए जब और आगे बढ़ जाओगे, तब अन्त में समझोगे, ईश्वर ही एकमात्र वस्तु हैं और सब अवस्तु, ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य है।...''[२]

प्राय: मन में यह विचार आता है कि हम जो इस संसार को देख रहे हैं, वह सत्य है या असत्य। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में हम देखते हैं कि एक दिन २८ नवम्बर, १८८३ ई. को कमल-कुटीर में केशवचन्द्र सेन को देखकर दक्षिणेश्वर लौटते समय रात में सात बजे के बाद श्रीरामकृष्ण माथागसा गली में श्रीजयगोपाल के घर पर गये थे। वहाँ पर जयगोपाल के भाई बैकुण्ठ भी उपस्थित थे और उन्होंने यही प्रश्न किया कि क्या संसार मिथ्या है? श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि ''जब तक उनका (ईश्वर का) ज्ञान नहीं होता, तब तक मिथ्या है।... तुम लोग तो स्वयं हो देख रहे हो कि संसार अनित्य है। देखो न, कितने आदमी आए और गए। कितने जन्म लिये और कितने मर गये। संसार अभी-अभी है और थोड़ी देर में नहीं! अनित्य! जिन्हें लेकर इतना 'मेरा', 'मेरा' कर रहे हो, आँखें बन्द करते ही कहीं कुछ नहीं है। है कोई नहीं, फिर भी नाती की बाँह पकड़े बैठे हैं। उसके लिए वाराणसी नहीं जा सकते हैं – मेरे लाल का क्या होगा? आने-जाने की राह है, फिर भी मछली भाग नहीं सकती। रेशम के कीड़े अपनी बनायी गोटियों में ही अपना प्राण दे देते हैं। इस प्रकार संसार मिथ्या है, अनित्य है।''[३]

श्रीरामकृष्ण कहते हैं – सभी धर्म सत्य हैं – जितने मत हैं, उतने ही पथ हैं। श्रीरामकृष्ण की एक मुख्य शिक्षा है कि सभी धर्म सत्य हैं और सभी धर्मों के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। धर्म को लेकर लड़ाई-झगड़ा करना ठीक नहीं है। क्योंकि सभी उस एक ईश्वर को विभिन्न नामों से पुकार रहे हैं। इसको समझाने के लिये श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ''एक के अतिरिक्त दो तो नहीं है, चाहे जिस नाम से कोई ईश्वर को पुकारे, यदि वह पुकार हार्दिक हो, तो वह उनके पास अवश्य पहुँचेगी। व्याकुलता रहनी चाहिए।''[४]

कुछ लोग अन्य धर्मों से विद्वेष और घृणा करते हैं। इस संकीर्ण भाव को दूर करने के लिये श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ''मेरा धर्म ठीक है और दूसरों का गलत, यह भावना अच्छी नहीं है। ईश्वर एक ही हैं, दो नहीं। उन्हीं को भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। कोई कहता है गॉड, तो कोई अल्लाह, कोई कहता है कृष्ण, कोई शिव, तो कोई ब्रह्म। जैसे तालाब में जल है। एक घाट पर लोग कहते हैं, 'जल' दूसरे घाट पर कहते हैं 'वाटर' और तीसरे घाट पर कहते हैं 'पानी'। हिन्दू कहते हैं 'जल', ईसाई कहते हैं 'वाटर' और मुसलमान कहते हैं 'पानी', परन्तु वस्तु एक ही है। मत तो पथ हैं। एक-एक धर्ममत एक-एक पथ है,

जो ईश्वर की ओर ले जाता है। जैसे नदियाँ विभिन्न दिशाओं से आकर सागर में मिल जाती हैं।

"वेद, पुराण, तन्त्र, सबका प्रतिपाद्य विषय वही एक सच्चिदानन्द है। वेदों में सच्चिदानन्द ब्रह्म, पुराणों में सच्चिदानन्द कृष्ण, तन्त्रों में सच्चिदानन्द शिव कहा है। सच्चिदानन्द ब्रह्म, सच्चिदानन्द कृष्ण, सच्चिदानन्द शिव एक ही है।"[५]

गोस्पेल (Gospel) शब्द का दूसरा अक्षर (O) है। O = Objects Analysis (वस्तु-विचार या सत्-असत् विचार) हम बचपन से अपने बड़े-बुजुर्गों से सुनते आ रहे हैं कि क्या सही है, क्या गलत है, हमें इसका सदैव विचार करना चाहिए। श्रीरामकृष्ण अपने उपदेशों के माध्यम से वस्तु-विचार करने की शिक्षा देते हुए कहते हैं : "साथ ही साथ विचार भी खूब करना चाहिए। कामिनी और कांचन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है? रोटी, दाल, कपड़े, रहने की जगह, बस यहीं तक। रुपये से ईश्वर नहीं मिलते। तो रुपया जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। इसी को विचार कहते हैं, समझे?

"हाँ, वस्तु-विचार ! देखो, रुपये में क्या है और सुन्दरी की देह में भी क्या है। विचार करो, सुन्दरी की देह में केवल हाड़, माँस, चरबी, मल, मूत्र, यह सब है। ईश्वर को छोड़ इन्हीं वस्तुओं में मनुष्य मन क्यों लगाता है? क्यों वह ईश्वर को भूल जाता है?"[६]

गोस्पेल (Gospel) शब्द का तीसरा अक्षर (S) है। S= Satsanga; Sadhu Sanga, Solitude life (live in) (सत्संग, साधु-संग और एकान्तवास करो।) श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग के रचयिता स्वामी सारदानन्द जी महाराज साधुसंग या सत्संग की महिमा को बताते हुए लिखते हैं – भक्ति में एक संक्रामक शक्ति भी विद्यमान है। शारीरिक विकारों की तरह मानसिक भावों को भी एक से दूसरे में संक्रमित होते हुए हम देखते हैं। क्योंकि एक ही पदार्थ के विकार के अन्दर एक ही नियम के अनुसार समग्र स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् संग्रथित है, इस बात को आजकल केवल वैदिक ऋषियों की अनुभूति के द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है, भौतिकविज्ञान से भी यह बात प्राय: सिद्ध हो चुकी है। अत: एक के अन्दर भक्ति रूप मानसिक भाव जागृत होने पर उसके द्वारा दूसरे में सुप्त रूप से अन्तर्निहित उस भाव का जागृत होना, कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसीलिए धर्मभाव को उद्दीप्त करने में विशेष सहायक होने के कारण शास्त्रों में साधुसंग की इतनी महिमा गायी गयी है।[७]

इस प्रकार ईश्वर के प्रति भक्ति को जागृत करने के लिए सत्संग की बहुत ही आवश्यता है। इस बात को ध्यान में रखकर ही ठाकुर ने अपने उपदेशों में भक्तों को साधु-संग करने एवं सत्संग में रहने की आवश्यता पर बल दिया है, जिससे उनके लिये भक्ति को जागृत करने में सहायता प्राप्त हो सके।

साधु-संग से क्या हो सकता है? इसका एक उदाहरण देते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं : "मैं एक बार म्यूजियम में गया था। वहाँ मुझे फासिल (फासिल – करोड़ो वर्ष पूर्व की लकड़ी, पत्ते, फल, यहाँ तक कि फूल भी हमें आज पत्थर के रूप में प्राप्त हैं, इन्हें, फासिल कहते हैं।) दिखाये गये। मैने देखा कि लकड़ी पत्थर बन गया है, पूरा जानवर पत्थर बन गया है। देखा, संग का क्या गुण है ! इसी प्रकार सदा सज्जन का संग करने से वही बन जाता है।"[८]

अच्छा, हमने साधु-संग किया, तो इससे हमारा क्या लाभ होगा? इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "ईश्वर पर अनुराग होता है। उनसे प्रेम होता है।... साधुसंग करते-करते ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होता है।... साधुसंग करने पर एक और लाभ होता है, सत् और असत् का विचार होता है। सत् नित्य पदार्थ अर्थात् ईश्वर, असत् अर्थात् अनित्य।"

साधु-संग संन्यासी और गृहस्थ; दोनों के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। साधु-संग कितने दिन के लिये करना होगा। ठाकुर कहते हैं – "साधुसंग की सदा आवश्यकता है। साधु ईश्वर से मिला देते हैं।"[९]

अब सहज ही मन में यह प्रश्न उठता है कि साधु-संन्यासी की क्या पहचान है? सत्संग के लिये साधु-महात्मा की पहचान कैसे की जाये? इसका उत्तर देते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं – "जिनका मन, जिनका जीवन, जिनकी अन्तरात्मा ईश्वर में लीन हो गयी है, वही महात्मा हैं। जिन्होंने कामिनी और कांचन का त्याग कर दिया है, वही महात्मा हैं। जो महात्मा हैं, वे नारियों को संसार की दृष्टि से नहीं देखते। यदि नारियों के पास वे कभी जाते हैं, तो उन्हें मातृ-भाव से देखते हैं और उनकी पूजा करते हैं। साधु-महात्मा सदा

ईश्वर का ही चिन्तन करते हैं। ईश्वरीय प्रसंग के सिवाय और कोई बात उनके मुँह से नहीं निकलती है और सर्वभूतों में ईश्वर का ही वास है, यह जानकर वे सबकी सेवा करते हैं। संक्षेप में यही साधुओं के लक्षण हैं।''[१०]

एकान्तवास Solitude life (live in) गोस्पेल का तीसरा अक्षर एस है और इसे हम श्रीरामकृष्ण के एक और महत्त्वपूर्ण उपदेश एकान्त में रहने की शिक्षा के रूप में व्याख्या कर सकते हैं। एकान्तवास क्यों अवाश्यक है? क्या एकान्तवास के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती? यह भी प्रश्न बहुधा पूछा जाता है कि आज इस शहर के भाग-दौड़ एवं व्यस्त जीवन में एकान्त कहाँ से प्राप्त करूँ? तो एकान्तवास की समस्या का समाधान करते हुए श्रीरामकृष्ण परामर्श देते हैं : ''ध्यान करना चाहिए मन में, कोने में और वन में।''[११] (अगले अंक में समाप्त)

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, पृष्ठ ८१८ **२.** वही, ५२०-५२१ **३.** वही, ३५४ **४.** वही, ३२७ **५.** वही, २६५ **६.** वही, ९ **७.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खण्ड -१, पृष्ठ - १५४ **८.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, वही, ४५७ **९.** वही, १६६ **१०.** वही, ३५६ **११.** वही, ७-८

उन्हें खूब अपना मानो, तभी तो उन्हें पा सकोगे

किसी एक भाव को पक्का पकड़कर उसके सहारे ईश्वर को अपना बना लेना होगा, तभी न उनके ऊपर जोर चल सकेगा। देखो न, पहले-पहल जब नई पहचान होती है तब लोग 'आप-आप' कहा करते हैं; पर ज्योंही पहचान बढ़ी कि 'तुम-तुम' शुरु हो जाता है, फिर और 'आप-आप' मुँह से नहीं निकलता और सम्बन्ध जब अधिक घनिष्ठ हो जाता है, तो 'तुम' से भी काम नहीं चलता, तब तो 'तू-तू' आ जाता है! ईश्वर को अपने से भी अपना बना लेना होगा, तभी तो होगा। जैसे, बदचलन औरत जब पहले-पहल पराए पुरुष से प्रेम करते लगती है, तब कितना लुकाती-छिपाती है, कितना डरती-सहमती और लजाती है; पर जब प्रीत बढ़ जाती है, तब यह सब कुछ नहीं रह जाता। तब सीधे उसका हाथ पकड़कर सब के सामने कुल छोड़कर बाहर आ खड़ी होती है! फिर यदि वह आदमी उसकी भलीभाँति देखभाल न करे या उसे छोड़ देना चाहे, तो वह उसका गला पकड़कर खींचते हुए कहती है, 'तेरे लिए मैं घरबार छोड़कर रास्ते पर आ खड़ी हुई, अब तू मुझे खाने को रोटी देगा या नहीं, बोल।' इसी प्रकार, जिसने भगवान के लिए सब कुछ छोड़ दिया है, उनको अपना बना लिया है, वह उन पर जोर लगाकर कह सहता है, 'तेरे लिए मैंने सब कुछ छोड़ा, अब मुझे दर्शन देगा कि नहीं, बोल!'

तुम लोग ईश्वर के सम्बन्ध में इतना अधिक क्यों कहा करते हो? क्या पुत्र अपने पिता के सम्मुख होकर, बैठकर यही सोचा करता है कि मेरे बाबूजी के कितने मकान हैं, कितने घोड़े, कितनी गायें है, कितने बाग-बगीचे हैं? या पिताजी उसके कितने अपने हैं, वे उसे कितना प्यार करते हैं, यह सोचकर मुग्ध होता है? पिता अपने बेटे को खाने-पहनने को दे, सुख-चैन में रखे, तो इसमें विशेषता क्या है? हम लोग सभी उनकी सन्तान हैं, अतएव वे हमारे प्रति इस प्रकार का सदय व्यवहार करेंगे ही, इसमें आश्चर्य क्या है? इसलिए जो यथार्थ भक्त होता है, वह इन सब बातों को न सोच उन्हें अपना मानकर उनसे हठ करता है, मान करता है, जोर के साथ उनसे कहता है, 'तुम्हें मेरी प्रार्थना पूरी करनी ही पड़ेगी, मुझे दर्शन देने ही होंगे।' उनके ऐश्वर्य का इतना अधिक विचार करने से उन्हें अपने निकट आत्मीय के रूप में नहीं सोचा जा सकता, उन पर जोर नहीं चलाया जा सकता। तब वे कितने महान हैं, हमसे कितनी दूर हैं, इस तरह का भाव आ जाता है। उन्हें खून अपना मानो, तभी तो उन्हें पा सकोगे।

चन्दामामा सभी बच्चों के मामा हैं। इसी प्रकार भगवान भी सभी के हैं। उन्हें पुकारने का सभी को अधिकार है। जो कोई उन्हें पुकारता है, वह उनके दर्शन प्राप्त कर धन्य हो जाता है। यदि तुम उन्हें पुकारो, तो तुम्हें भी उनके दर्शन होंगे।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस देव

साधुओं के पावन प्रसंग (८५)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

''स्वामी जगदानन्द ने कहा, 'बहुत समय विचार करने से हम यह समझते हैं कि ईश्वर ही सत्य हैं; यद्यपि उन्होंने हमारी जिम्मेदारी ले ली है तथा सदैव हमारी देखरेख कर रहे हैं। तथापि हृदय से हम इसका अनुभव नहीं करते। वक्त्रोद्धृतोऽपि हृदये न मे भाति किञ्चित् अर्थात मेरे मुख से व्यक्त होने पर भी हृदय में इनका बिल्कुल भी बोध नहीं होता। इसका मतलब हुआ साधक ने सत्य को अभी तक नहीं समझा है। शुद्ध भक्ति और शुद्ध ज्ञान दोनों एक हैं और समान हैं। इसको अनुभव करने का उपाय क्या है? इसके लिए उसे निष्ठापूर्वक ध्यान करना होगा तथा ईश्वर-लाभ करना होगा।

''शुकुल महाराज (स्वामी आत्मानन्द) ने कहा, 'ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव को क्या कोई सदा-सर्वदा दर्शन कर सकता है? बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) ठाकुर को इस मठ के बरामदे में टहलते हुए देखा करते थे। वे ठाकुर को बेलूड़ मठ में यहाँ-वहाँ भी देखा करते। इसलिए वे मठ-प्रांगण में थूकते नहीं थे। एक दिन बाबूराम महाराज छाकू (स्वामी यादवानन्द) को छड़ी लेकर मारने के लिए दौड़े क्योंकि वह मठ के गोदाम में चप्पल पहनकर चले गये थे। जब कोई उनका निरन्तर दर्शन करता है, तब उसके पैर बेताल नहीं पड़ते।' ''

स्वामी सारदानन्द जी महाराज से प्रश्न-उत्तर

''प्रश्न – 'निर्विकल्प समाधि के पश्चात् क्या ईश्वर कोटि साधारण भूमि पर आ सकते हैं?'

''स्वामी सारदानन्द – निर्विकल्प समाधि की विभिन्न स्थितियाँ तथा अवस्थाएँ होती हैं। यदि पूर्णज्ञान होने पर स्वयं का अस्तित्व पूरी तरह से ब्रह्म में लीन हो जाये, तो जीवकोटि या ईश्वरकोटि वहाँ से वापस नहीं आ सकते। केवल अवतारी पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं। इसको तर्क के द्वारा बताया नहीं जा सकता। अद्वैत भूमि से वापस आने का मतलब है अस्थायी रूप से सविकल्प समाधि में अवस्थान करना। उस अवस्था में अहं या मैं-पन बहुत ही सूक्ष्म या सुप्त रूप में रहता है। इसीलिए विवेकचूडामणि में श्रीशंकराचार्य निर्विकल्प समाधि में लीन होने की बात बारम्बार कहते हैं। नित्यमुक्त ईश्वरकोटियों की शक्ति में भी विविधता है। श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द को सहस्रदल-कमल कहा करते थे। तथा अन्य किसी को पाँचदल, दसदल या अधिक से अधिक शतदल-कमल बताया करते थे। ठाकुर ने अपने शिष्यों में से छह लोगों को ईश्वरकोटि कहकर निर्देश किया है। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी योगानन्द, स्वामी निरञ्जनानन्द और पूर्णचन्द्र घोष। स्वामीजी नर-ऋषि के अवतार थे तथा इस बात को स्वयं उन्होंने मेरे सामने स्वीकार किया था।

''प्रश्न – क्या कोई जीवात्मा ईश्वरकोटि हो सकता है?

''स्वामी सारदानन्द – ईश्वरकोटि का अर्थ है विशेष शक्ति लेकर जन्मग्रहण करना। पूर्व जन्म में वे बद्ध थे कि नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए मिट्टी का लौंदा अपनेआप मटका नहीं बन सकता। किन्तु श्रीरामकृष्ण हमसे कहा करते थे कि ईश्वर की कृपा से यह भी सम्भव है।

'निर्विकल्प समाधि के समय श्रीरामकृष्ण की हृदयगति एवं नाड़ी रुक जाती थी। मृत्यु का लक्षण यह होता है कि शरीर भारी हो जाता है;

शरीर की गर्मी समाप्त हो जाती है; चीरा लगाने पर खून नहीं बहता है, ये सब चिकित्सा विज्ञान में ज्ञात तथ्य हैं। लेकिन ठाकुर के साथ क्या हुआ, यह विशेषज्ञ चिकित्सकों के ज्ञान से भी परे है। आधुनिक विज्ञान अभी तक इसे समझा नहीं सका है।

''कुछ दिन पहले, नवगोपाल बाबू की पत्नी (निस्तारिणी घोष) को उनके इष्ट देवता, बालगोपाल का दर्शन हुआ। तत्पश्चात् उनको श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ। ठाकुर ने कहा, ''क्या तुमने मुझे पहचाना?'' इसका मतलब बालगोपाल और श्रीरामकृष्ण दोनों पृथक् नहीं हैं। इस प्रकार के अनुभव के बाद, शरीर अधिक दिन तक नहीं रहता। गोपाल-माँ को भी सतत गोपाल का दर्शन होता था।

''वार्तालाप के दौरान, स्वामी सारदानन्द ने कहा, 'जब किसी के मन, वचन और कर्म एक हो जाते हैं, तब उसके द्वारा बोले गए शब्द श्रोता के हृदय को छूते हैं और उसी तरह के विचार उसके मन में उत्पन्न होते हैं।' ''

२० जुलाई, १९२२

''स्वामी सारदानन्द महाराज ने कहा, 'कल्पना ध्यान में सहायक साधन है। जो 'नेति नेति' (विचारमार्ग) का अनुसरण करते हैं, उनकी बात दूसरी है। लेकिन जो ईश्वर के रूप का ध्यान करते हैं, वे केवल कल्पना के द्वारा ही रूप का ध्यान करते हैं। वही मानस-पूजा के समय किया जाता है। यह ऐसा है, जैसे ईश्वर मानव रूप धारण करते हैं और हमारी आन्तरिक प्रार्थना सुनते हैं। उदाहरण के लिए कवियों को लो। जब वे लोग प्रेरित होते हैं और कुछ लिखते हैं, क्या यह सब झूठ है?

''यदि कल्पना सन्तों और ऋषियों के प्रत्यक्ष अनुभव से मिलती-जुलती है, तो वह सत्य से अधिक दूर नहीं है। उदाहरण के लिए, हमलोग पूजा के समय भूतशुद्धि या कुण्डलिनी जागरण की कल्पना करते हैं। किन्तु ये सब केवल कल्पनाएँ नहीं है। सन्तों और ऋषियों ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

''जिन लोगों का हृदय और मस्तिष्क दोनों का विकास साथ-साथ होता है, उनलोगों को कुछ आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होता है। जिन लोगों के मन का रुझान ज्ञानमार्ग की ओर है, उनको अपने हृदय का भी विकास करना होगा, अन्यथा वे लोग कहीं नहीं पहुँचेंगे। जिन लोगों के भीतर थोड़ा-सा भी प्रेम नहीं है, हृदय में कोई संवेदना नहीं है, वे केवल स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित होते हैं। वे केवल स्वयं से ही प्रेम करते हैं। प्रेम व्यक्ति को नि:स्वार्थ बनाता है।

२१ जुलाई, १९२२

''स्वामी सारदानन्द ने कहा, 'स्वामीजी ने कहा था कि कोई व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को बौद्धिक स्तर पर समझ सकता है, लेकिन यह समझना बहुत कठिन है कि अनन्त ईश्वर मानव शरीर धारण कर अवतार लेते हैं। स्वामीजी के विषय में श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि महामाया ने उसे जैसे पत्थर से दबाकर रखा है। उसे दो वक्त की रोटी मिलने से वह तूफान ला देगा।

''श्रीरामकृष्ण अपवित्र व्यक्तियों का स्पर्श सहन नहीं कर पाते थे, लेकिन वे उनलोगों की प्रार्थना सुना करते हैं, जो बहुत ईमानदार और सत्यवादी हैं। मैंने देखा है कि श्रीमाँ सारदा देवी उस व्यक्ति को क्षमा कर देती थीं, जो उनके पास आकर अपनी गलतियों और कुकर्मों को स्वीकार करता था।

२७ जुलाई, १९२२

''स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने कहा, 'वेदान्त के उत्तम अधिकारी के लिए एक साधक के पास कुछ योग्यताएँ होनी चाहिए, जैसे नित्यानित्यवस्तुविवेक (नित्य और अनित्य वस्तु का विवेक), इहामुत्रफलभोगविराग (लौकिक तथा पारलौकिक सुख-भोग से वैराग्य), शमादिषट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा) और अन्त में मुमुक्षुत्व (मुक्ति की तीव्र इच्छा)। भक्त भगवान के साथ एक सम्बन्ध विकसित करता है। श्रीचैतन्य और राय रामानन्द के बीच संवाद में ज्ञानमिश्रित भक्ति को बताया गया है। ज्ञानमिश्रित भक्ति वैधी भक्ति (प्रारम्भिक भक्ति) की ओर ले जाती है; जो परवर्ती अवस्था में रागानुगा भक्ति (सर्वोच्च भक्ति) में परिवर्तित हो जाती है। आजकल वैष्णवगण कूदकर अन्तिम अवस्था (रागानुगा भक्ति) में पहुँचना चाहते हैं, जिसके फलस्वरूप इतना विकार या व्यभिचार है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि साधारण साधक के लिए ज्ञानमिश्रित भक्ति का पथ ही उपर्युक्त है। हैमिल्टन कहते हैं, ''जहाँ दर्शनशास्त्र समाप्त होता है, वहाँ से धर्म का आरम्भ होता है।'' तर्क और वाद-विवाद के पश्चात् दर्शनशास्त्र कहता है कि ईश्वर का अस्तित्व है, जबकि धर्म ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बताता है।' **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

कनखल, हरिद्वार, उत्तराखंड - 249408

फोन : 01334-244020, मो. 94109-75929

ई-मेल : rkmkankahal@gmail.com

वेबसाइट : https://kankhal.rkmm.org

आपसे सहयोग हेतु निवेदन

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कनखल, हरिद्वार पिछले सौ वर्षों से समाज की सेवा कर रहा है, जिसने स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक कल्याण और आध्यात्मिक उत्थान के क्षेत्रों में गहरा प्रभाव डाला है। यह आश्रम स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित होकर 190 बिस्तरों वाला एक बहु-विशिष्ट धर्मार्थ चिकित्सालय संचालित करता है । इस चिकित्सालय में साधुओं, विद्यार्थियों और गरीबों की उच्च गुणवत्ता वाली चिकित्सा-सेवा 'मानव की सेवा ईश्वर की सेवा है' इस भाव से निःशुल्क एवं रियायती दरों पर की जाती है ।

भविष्य की योजना - नर्सिंग कॉलेज और बालिकाओं के लिए छात्रावास

गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने की अपनी प्रतिबद्धता के अन्तर्गत रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम ने नर्सिंग कॉलेज की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव किया, जिससे कुशल नर्सों की बढ़ती माँग को पूरा किया जा सके । इस परियोजना के अन्तर्गत **बी.एससी. नर्सिंग कॉलेज और जीएनएम प्रशिक्षण संस्थान** का निर्माण किया जाएगा, जो हरिद्वार के कनखल में बालिकाओं के लिए **विश्वस्तरीय प्रशिक्षण सुविधाएँ** प्रदान करेगा। इसके साथ ही **100 छात्राओं** के लिए एक छात्रावास भी बनाया जाएगा।

अनुमानित परियोजना की लागत : रु. 16 करोड़

इस पावन परियोजना को पूर्णतः साकार करने के लिये हम आपके उदार सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

बैंक विवरण (केवल भारतीय दाताओं के लिये) :
नाम : रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
खाता संख्या : 50100707852620
बैंक : एचडीएफसी बैंक, जगतीपुर, हरिद्वार - 249408
IFSC कोड : HDFC0005496

* विदेशी दानदाताओं से अनुरोध है कि वे rkmkankahal@gmail.com इस आइडी पर ईमेल करें, ताकि हम उनसे बैंक विवरण साझा कर सकें ।

* दान आयकर अधिनियम की धारा **80 (G)** के अन्तर्गत कर-मुक्त है ।

* दान करने के बाद, कृपया हमें निम्नलिखित विवरण के साथ ई-मेल करें – आपका नाम, पता, पैन नम्बर, दान की राशि और ट्रांसफर की तिथि ।

* कृपया यह भी उल्लेख करें कि दान 'नर्सिंग कॉलेज और छात्रावास' के लिये दिया गया है ।

आपका आज का सहयोग भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बनेगा ।

आपकी सेवा में
(स्वामी दयामूर्त्यानन्द)
सचिव

रामकृष्ण मिशन की ११६वीं वार्षिक साधारण सभा

रामकृष्ण मिशन की ११६वीं वार्षिक सामान्य सभा रविवार, १४ दिसम्बर २०२५ को सन्ध्या ३.३० बजे बेलूड़ मठ में आयोजित की गई, जिसमें रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी द्वारा वित्तीय वर्ष २०२४-२५ में किये गये कार्यों के विषय में रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

१. पुरस्कार एवं सम्मान – **(क)** रामकृष्ण मिशन के डीम्ड विश्वविद्यालय RKMVERI को भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मन्त्रालय द्वारा प्रारम्भ किये गये, प्रमुख कार्यक्रम 'प्राकृतिक कृषि पर राष्ट्रीय मिशन के अन्तर्गत 'प्राकृतिक कृषि केन्द्र' स्थापित किये जाने पर चार अन्य संस्थानों के साथ चयनित किया गया तथा राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया गया। **(ख)** राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) द्वारा कॉलेज ऑफ एजुकेशन कोयम्बटूर एवं शिक्षा मन्दिर बेलूड़ मठ को ए+ ग्रेड से सम्मानित किया। **(ग)** राष्ट्रीय संस्थागत रैंकिंग फ्रेमवर्क (NIRF) शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार ने भारत रैंकिंग की घोषणा की, जिसमें रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित कॉलेजों ने उल्लेखनीय स्थान प्राप्त किये। रैंकिंग में विवेकानन्द सेंटेनरी कॉलेज को तीसरा, विद्यामन्दिर आवासीय कॉलेज, बेलूड़ मठ को सतरहवाँ, नरेन्द्रपुर आवासीय कॉलेज, कोलकत्ता को चौबीसवाँ एवं कला एवं विज्ञान कॉलेज, कोयम्बटूर को ८२वाँ स्थान प्राप्त हुआ। **(घ)** भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा रामकृष्ण मिशन, मोराबादी, राँची केन्द्र की दिव्यायन कृषि केन्द्र ईकाई को चावल की दो स्थानीय सुगन्धित किस्मों को विकसित करने के लिए प्रमाणित एवं सम्मानित किया गया। **(ङ)** वर्ल्ड स्पोर्टस योग फेडरेशन, कॉव्लून, हॉगकॉग ने कोयम्बटूर स्थित मारूति कॉलेज ऑफ फिजिकल एजुकेशन को योग वर्ल्ड रिकॉर्ड प्रमाण पत्र एवम् इंस्टीट्यूशन ऑफ एक्सीलेंस अवार्ड प्रदान किया। **(च)** विवेकनगर, अगरतला विद्यालय को त्रिपुरा सरकार द्वारा सर्वश्रेष्ठ विद्यालय का पुरस्कार प्रदान किया गया। **(छ)** कोजिकोड विद्यालय को जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक सोसायटी, कोजिकोड (केरल) द्वारा सर्वश्रेष्ठ विद्यालय का पुरस्कार प्रदान किया गया। **(ज)** विद्यामन्दिर आवासीय महाविद्यालय, बेलूड़ मठ को औद्योगिक अनुसंधान विभाग (DSIR), विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान संगठन सम्मान प्रदान किया गया। **(झ)** पश्चिम बंगाल पोस्टल सर्कल द्वारा श्रीरामकृष्ण देव के जन्म दिवस के सुअवसर पर बेलूड़ मठ स्थित श्रीरामकृष्ण के सार्वभौमिक मन्दिर को चित्रित करता हुआ सचित्र पोस्टकार्ड जारी किया गया। स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिवस की स्मृति

को चिन्हित करने स्वामीजी के पैतृक आवास को दर्शाता हुआ विशेष डाक कवर एवं सारगाछी केन्द्र, मुर्शिदाबाद, पश्चिम बंगाल की १२५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर एक विशेष पोस्टल कवर जारी किया गया।

२. नवीन केन्द्र – (अ) रामकृष्ण मिशन के पाँच नवीन केन्द्र हाफलोंग एवं कुरलभंगा (असम में) नेल्लोर (आन्ध्र प्रदेश में) तथा सारती एवं सिलीगुड़ी (पश्चिम बंगाल) में प्रारम्भ किये गये। **(ब)** रामकृष्ण मठ के चार नवीन केन्द्र आदिपुर (गुजरात), कोल्हापुर (महाराष्ट्र), पतनमतिट्टा (केरल) एवं रीवा (मध्यप्रदेश) में आरम्भ किये गये।

३. भारत में गतिविधियाँ – रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण मठ ने अपने २४४ केन्द्रों एवं उप केन्द्रों के माध्यम से विभिन्न सेवाओं के लिये १६७०.७९ करोड़ रुपये खर्च किए, जिनका विवरण निम्नलिखित है –

सेवा-क्षेत्र	**लाभार्थियों की संख्या रु. (लाखों में)**	**व्यय की गई राशि रु. (करोड़ में)**
शिक्षा	२.९३	७४३.१७
चिकित्सा	८४.२५	६००.५४
सामान्य कल्याण	४३.८८	४२.८८
राहत एवं पुनर्वास	७.४६	११.५९
ग्रामीण एवं आदिवासी विकास (सामुदायिक कल्याण)	२.७२	६.३४
प्रवचन एवं अन्य सेवाएँ	७१.५३	२४०.९५
साहित्य प्रकाशन		२५.३२
		कुल = १,६७०.७९

४. भारत के बाहर विदेशों में गतिविधियाँ –

(अ) वाशिंगटन, डी.सी., यू.एस.ए. में एक नया केन्द्र प्रारम्भ किया गया। **(ब)** रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण मठ ने २४ देशों में स्थित ९९ केन्द्रों एवं उपकेन्द्रों के माध्यम से विभिन्न सेवाकार्य किये।

हम इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ के सेवा कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में अपने सदस्यों, सुभचिन्तकों एवं भक्तों को उनके अमूल्य समर्थन और सहयोग के लिये धन्यवाद देते हैं।

१४-१२-२०२५

स्वामी सुवीरानन्द
महासचिव
रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन